ओ३म्

त्यागमूर्त्ति

महात्मा हंसराजजी

लेखक

सत्यव्रत शर्म्मा द्विवेदी, सम्पादक नवजीवन

प्रकाशक

कर्मचन्द भल्ला, अध्यक्ष स्टार बुक डिपो, प्रयाग ।

१९१७

प्रथमबार] [मूल्य ।)

भूमिका

इसमें सन्देह नहीं कि महान् पुरुषों के जीवन की अलौकिक, और असाधारण घटनायें मानवसमुदाय के जीवन को उच्च और महान् आदर्श की ओर ले जाकर संसार में कर्त्तव्य पथारूढ़ करने में एक विचित्र कार्य्य कर दिखाती हैं। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन का सुधार करने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता। यदि उसके पूर्वजों के पवित्र इतिहास तथा आदर्श महात्माओं के पवित्र जीवन वृत्तान्त उसके समक्ष विद्यमान न होते। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि सच्चा इतिहास ही मानव समुदाय को उन्नति की ओर ले जाने में समर्थ होता है। जिस जाति का पवित्र इतिहास समुपलब्ध नहीं होता, उसका जीवन भी संसार में अल्पकालीन होकर एक समय ऐसा आता है कि उसका चिन्ह तक नहीं मिलता। इसलिये परमावश्यक है कि यदि भावी सन्तानों को हम उच्च और महान् आदर्श सन्तान बनाना चाहते हैं तो पवित्र इतिहास और आदर्श महात्माओं के जीवन चरित पाठ करावें।

महाभारत इतिहास में महात्मा व्यास बतलाते हैं कि—"महाजनो येन गतः स पन्था" अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्ग का अवलम्बन करते हैं वही मार्ग प्रत्येक सामान्य मनुष्य का अनुगमनीय होता है। इसी प्रकार महात्मा कृष्णजी ने गीता में कहा है कि "यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनाः" अर्थात् जिस प्रकार जो जो श्रेष्ठ महात्माजन आचरण करते हैं उसी प्रकार उसी उसी का इतर मनुष्य अनुकरण करते हैं—इन समस्त बातों से यह भले प्रकार सिद्ध है कि महान् पुरुषों के जीवन चरित ही इतर मनुष्यों को उन्नति की पराकाष्ठा तक

पहुँचाने में समर्थ होते हैं।

हम आज जिस त्यागमूर्त्ति महात्मा हंसराज के जीवन की पवित्र कथा अपने सहृदय विचारशील पाठकों के समक्ष उपस्थापित करते हैं इससे हमारे होनहार नवयुवक विद्यार्थी-गण अपने जीवन को आदर्श जीवन बनाने में बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

वस्तुतः संसार में जो कर्त्तव्य परायण है जो. सत्यसंकल्प है वह निस्सन्देह अपने जीवन के लक्ष्य को सहसा सानन्द प्राप्त कर लेता है। दृढ़ कर्त्तव्य परायण को संसार में कोई वस्तु अलभ्य नहीं। महान् पुरुषों का दृढ़प्रतिज्ञ होना ही उनकी महत्ता का द्योतक है। इसी कारण हम कहते हैं कि जिस समय कालिज की स्थापना का प्रस्ताव लाहौर आर्य्य समाज के सम्मुख उपस्थित हुआ और समस्त सामाजिक सज्जनों ने उसको सहर्ष स्वीकृत किया। परन्तु चन्दा आदि के कमी के कारण सामाजिकों की लहलहाती हुई आशा सर्वथा निराशा में परिवर्त्तित हो गई। जहां कालिज तो दूर रहा किन्तु एक बड़े स्कूल की स्थापना भी दुस्साध्य प्रतीत होने लगी थी वहां यह किस शूर वीर का कार्य्य था? किसकी शक्ति थी? किसका पौरुष था? कि जो आज डी० ए० वी० कालिज लाहौर भारत के समस्त कालिजों में से उत्तम श्रेणी में परिगणित होता है। स्पष्ट उत्तर है कि एक मात्र महात्मा हंसराज का, इसी लिये हमको सहर्ष एवं साभिमान कहने का साहस है कि हंसराज, केवल हंसराज नहीं प्रत्युत पूर्ण महात्मा हंसराज हैं।

आज वैदिक धर्म के प्रेमी किसी विचारशील से यह बात अविदित नहीं है कि समय समय पर वैदिक धर्म पर कितनी कितनी घोर विपत्तियां आईं और परमात्मा की अतीव दयालुता से महान् पुरुषों ने जन्म ले लेकर अपना सर्वस्व धर्म पर निछावर कर पवित्र ईश्वरीय वैदिक धर्म की रक्षा की। जिस समय बौद्ध मत के प्रचार से समस्त भारत में वैदिक धर्म का सर्वथा अभाव हो गया था उस समय एक राजा की छोटी सी बालिका के हृदय में वैदिक धर्म का स्वतः प्रेम जागृत हुआ। यद्यपि उसके माता पितादि सभी कुटुम्बीजन बौद्ध मतानुयायी थे। तथापि पूर्व संस्कार आदि के कारण उसके हृदय में वेदों का प्रेम था। एक दिन बालिका अपनी अट्टालिका पर बैठी थी कि श्रीमान् स्वामी कुमारिल भट्ट को उसने आते देखा। काषाय वस्त्रादि को देख उसने जाना कि कदाचित् यह कोई वैदिक धर्माभिमानी ही महात्मा हैं कन्या भट्ट जी को देख कर उनको सुना कर बोली "किं करोमि क्वगच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति" अर्थात् क्या करूं और कहां जाऊं कौन वेदों का उद्धार करेगा—इतना सुनते ही श्रीकुमारिल भट्टजी ने उत्तर दिया "मा विभेषि वरारोहे भट्टाचार्योऽस्मि भूतले" अर्थात् हे कन्या अब भय मत कर कुमारिल भट्ट पृथिवी पर उपस्थित है। प्रयोजन यह है कि बौद्धकालीन समय में श्रीस्वामी शङ्कराचार्य्य और श्रीकुमारिल भट्ट ने सम्यक् प्रकार वैदिक धर्म की रक्षा की। परन्तु इस उन्नीसवीं शताब्दी में जहां देश में नाना मतों का प्रचार हो गया था जिसको देखो वह अपनी ढाई चांवल की खिचड़ी पृथक् ही पका रहा है। जहां वेदों पर वाममार्ग यवन ईसाई

बौद्ध जैन आदि के प्रबल आक्रमण हो रहे थे जहां वेदों के विषय में पौराणिक कालीन वाममार्ग मतानुयायी वेदभाष्यकार महीधरादि के भाष्यों का आश्रय ले अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले विलसन, ग्रिफिथ और मेक्समूलरादि पाश्चात्य विद्वान् मनगढ़न्त सम्मति स्थापित कर रहे थे और उन अंग्रेजी अनुवादों और सम्मतियों के द्वारा हंटर आदि के लिखे हुये इतिहास स्कूलों और कालिजों में ऋषि सन्तान पढ़ कर ईश्वरीय ज्ञान वेद से श्रद्धा हटा रहे थे यहां तक कि सर रमेशचन्द्रादि जैसे योग्य विद्वान् वेदों के विरुद्ध लेख लिखने का उत्कट साहस कर बैठे। जहां "त्रयोवेदस्य कर्त्तारो धूर्त-भाण्ड निशाचरः" जैसे श्लोकों की रचना हो चुकी थी— वहां यह किसका कार्य्य था कि फिर से पवित्र वेदों की श्रद्धा ऋषि सन्तान के हृदय में विशेष रूप से उत्पन्न करदी ? स्पष्ट कहना पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का।

टुक विचारिये कि जहां अंग्रेजी साहित्य को पढ़ कर रमेशचन्द्र जैसे वेदश्रद्धा विहीन ऋषि सन्तान हो रहे थे जहां अंग्रेजी पठित ऋषि सन्तान वेदों को गड़रियों का गीत आर्य्यों को सोम नामक शराब का पीने वाला एवं जड़ोपासक मानने लगे थे। वहां महर्षि दयानन्द सरस्वती का ही यह अद्भुत काम था कि महात्मा हंसराज को मिशन स्कूल लाहौर के ईसाई हेडमास्टर के आर्य्यों की सभ्यता पर कटाक्ष करते ही उसका उत्तर देने को बाध्य किया और इसी धुनि और वेदों के प्रेम ने महात्मा हंसराज के जीवन में अलौकिक परिवर्त्तन कर दिखाया।

आज समस्त आर्य्य जाति महात्मा जी की कृतज्ञ है क्योंकि

महात्मा हंसराज ने आर्य्य जाति सुधारक यज्ञ में अपने पवित्र जीवन की आहुति देदी। समस्त संसार के सुख भोग और ऐश्वर्यों से उपरत हो आर्य्य जाति की सेवा ही जिनके जीवन का अन्तिम लक्षय बना। यह आज किसी विचारशील से अप्रकट नहीं है।

आज कौन ऐसा पुरुष है जो यह कहने को उद्यत न हो कि महात्मा हंसराजजी भूतपूर्व प्रिन्सपल दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज लाहौर ने भारत के सभी प्रान्तों और विशेषतया पंजाब प्रान्त के सहस्रों नवयुवक विद्यार्थियों को देश हित, धर्म हित और जाति हित का अपूर्व प्रेमी और वेदों का सच्चा अभिमानी नहीं बनाया—हम ऊपर दिखला चुके हैं कि अंग्रेजी—शिक्षा प्राप्त कर जहां क्रृश्चियन धर्म कर्म आत्मगौरव और जातीयता को नष्ट कर रहे थे वहां डी० ए० वी० कालिज ने मृतप्राय आर्य्यजाति के नवयुवकों में धर्म कर्म आत्मगौरव और जातीयता का अभिमान भर कर नवीन जीवन का सञ्चार कर दिया जो वास्तव में महात्माजी के दृढ़ प्रतिज्ञ और कर्त्तव्यपरायण होने का ज्वलन्त उदाहरण है। इसी लिये परमावश्यक है कि ऐसे महात्माओं के पवित्र जीवन-चरित्रों को छपा कर भारत के होनहार सपूत बच्चों और कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने वाले नवयुवकों की सेवा में उपस्थापित किये जावें जिससे वे अपने जीवनों को आदर्श जीवन बनाने में इनसे सहायता ले सकें। तदनुसार ही हम महात्मा हंसराज के पवित्र जीवन की घटनाओं का इस छोटी सी पुस्तक में उल्लेख करके अपने होनहार नवयुवकों की सेवा में

सादर समर्पित करते हैं और पूर्ण आशा करते हैं कि हमारे नवयुवक सादर स्वीकार कर हमारी तुच्छ सेवा का निरादर न करेंगे।

निवेदक --

सत्यव्रत

ओ३म्

त्यागमूर्त्ति महात्मा हंसराज

जन्म और बाल्यकाल

श्रीमान् महात्मा हंसराजजी का जन्म पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत ज़िला होशियार के बजवाड़ा नामक क़सबामें सन् १८६४ ई० में हुआ। यह क़सबा बहुत प्राचीन तथा हिमालय पहाड़ के किनारे पर बसा हुआ है। राजा संसारचन्द के एक गढ़ के खंडहर इसके प्राचीनत्व के साक्षी हैं। अधिकतर इस नगर में खत्री जाति के मनुष्य वास करते हैं। महात्मा हंसराज जी का शुभ जन्म भी इसी जाति के अन्तर्गत हुआ है। आप के पूज्य पिताजी का शुभ नाम लाला चुन्नीलालजी था और पूज्यवरा माताजी का नाम श्रीमती हरदेवीजी है जो ईश्वर के अनुग्रह से अद्यावधि जीवित हैं। परन्तु पिताजी का स्वर्गवास महात्मा जी के बाल्य काल ही में हो गया था अर्थात् पिताजी के मृत्यु के समय महात्माजी का आयु केवल १० वर्ष के समीप था परन्तु आप के बड़े भ्राता जिनका शुभ नाम लाला मलकराज जी है वे उस समय १५ वर्ष के थे। पिताजी के मृत्यु के समय महात्मा हंसराजजी

की पूजनीया माता ने अपने पूजनीय पति का ध्यान इन दोनों अनाथ बच्चों की ओर आकर्षित करते हुये अपनी निर्धनता पर शोक प्रकट किया। इस पर महात्मा हंसराजजी के पिता ने अन्तिम समय पर यही उत्तर दिया कि हमारे सुपुत्र मलकराज और हंसराज होनहार बालक हैं। हमारे कानों में कहीं से ये शब्द आ रहे हैं कि यह तुम्हारी निर्धनता अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकती और न अब अधिक दिनों तक यह हमारा वंश ही गुप्त रूप से रह सकता है। वस्तुतः इस कथन का यह भाव था कि जब ये दोनों बालक बड़े होंगे तो जो कष्ट इनके लालन पालन और शिक्षण में उठाने पड़ेंगे वे शीघ्र ही आनन्द के रूप में परिवर्त्तित हो जायंगे।

इस कथन के अनन्तर पूज्य पिताजी का स्वर्गवास हो गया परन्तु अन्ततोगत्वा आप की अन्तिम समय में कही हुई भविष्यद्वाणी अक्षरशः सत्य निकली। आज न केवल पंजाब किन्तु समस्त भारत महात्मा हंसराज के उपकारों का ऋणी एवं कृतज्ञ है। आप के बड़े भ्राता लाला मलकराज जी भला व्यापारिक कार्य्यों में पूर्ण योग्य हैं लाला मलक राज जी इस कार्य्य को जिस सत्यता एवं कर्त्तव्य-परायणता से भविष्य पर दृष्टि रखते हुये पूर्णतया करते हैं उसके कारण जनता (पबलिक) आप को अत्यन्त गौरव की दृष्टि से देखती और प्रतिष्ठा करती है।

पिताजी के मृत्यु के पश्चात् लाला मलकराजजी ने लाहौर में आकर रेलवे के मुहकमा में नौकरी करली और महात्मा हंसराज भी अपने बड़े भ्राता के साथ विद्याध्ययन

करने के संकल्प से लाहौर चले आये और यहां आकर महात्मा जी मिशन स्कूल में भरती हुये। थोड़े ही दिनों में ईश्वरदत्त योग्यता, नम्रता और प्रियभाषण आदि अपूर्व शुभ गुणों के कारण महात्मा जी सर्वप्रिय हो गये यहां तक कि स्कूल के हेडमास्टर जो वास्तव में ईसाई—मत के मानने वाले थे आप के साथ अत्यन्त कृपालुता का व्यवहार करने लगे।

किसी भाषा के कवि का यह वाक्य यहां पर ठीक २ संघटित होता है कि "होनहार विरवान के होत चीकने पात" अर्थात् जो पुरुष संसार में देश धर्म अथवा जाति के आदर्श होते हैं उनमें और सामान्य पुरुषों में बाल्यावस्था से ही स्वाभाविक विचित्रता होती है। हमारे महात्माजी के स्वाभाविक अपूर्व गुण इसके साक्षी हैं। एक दिन आप के हेडमास्टर साहब ने आर्य्यों की सभ्यता पर कुछ अनुचित कटाक्ष किया और यह कहा कि पुराकाल में आर्य्य लोग पत्थर और वृक्षों की पूजा करते थे अस्तु।

हेडमास्टर के उपर्युक्त शब्द मुख्यतः महात्मा हंसराजजी को सम्बोधन करके कहे गये थे। अतएव महात्माजी चुप न रहे किन्तु आपने शीघ्र ही हेडमास्टर के कथन का खण्डन कर दिया। तदनन्तर हेडमास्टर साहब ने अंग्रेज़ी के एक पुस्तक का प्रमाण उपस्थापित किया। यह पुस्तक उस समय उस स्कूल के पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित था परन्तु महात्माजी ने "फ़सिल हिन्द" नामक पुस्तक में से एक प्रमाण दे कर सविनय निवेदन किया कि वास्तव में वेदों में केवल एक परमात्मा की पूजा करने की आज्ञा है।

इस पर हेडमास्टर साहब और महात्मा जी के मध्य में विवाद पड़ गया। फिर क्या था शान्ति का दम भरने वाला ईसायत का न्याय दिखाई देने लगा। हेडमास्टर साहब क्रोध में भर कर कहने लगे कि हमारे स्कूल से निकल जाओ। कहिये पाठक क्या यही न्याय है। महात्मा भर्तृहरि कहते हैं कि :—

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव,
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता।
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां-
वैदग्ध्यकीर्त्तिमपहर्त्तुमसौ समर्थः॥

अर्थात् हंस पर यदि विधाता कोप करे तो उसका कमल वन में निवास और वहां का विलास नष्ट कर सकता है। परन्तु उसके दूध और जल को पृथक् २ करने की अपूर्व शक्ति की कीर्त्ति को विधाता भी नष्ट नहीं कर सकता है। प्रयोजन यह है कि जिस आर्य्यजाति की धर्मप्रियता—धर्मनिष्ठा के कारण विमल कीर्त्ति दशों दिशाओं में गुंजायमान है; जिस आर्य्यजाति का मूल मन्त्र यह था कि "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" अर्थात् मारा हुआ धर्म मारने वाले को समूल नष्ट कर देता है और रक्षित धर्म रक्षक की सर्व प्रकार रक्षा करता है; जिस आर्य्यजाति के होनहार बच्चों ने तलवार से मारा जाना सहर्ष स्वीकार किया दीवारों में चुना जाना जीवन का एक सामान्य कार्य्य समझा माताओं के साथ जीवित चिता में जल कर धर्म रक्षा की परीक्षा में उत्तीर्ण होना एकसौभाग्य माना उस जाति के होनहार पुत्ररत्न महात्मा हंसराज स्कूल से निकाले जाने की

क्या प्रतीक्षा करते कदापि नहीं। अतएव निर्भयता के साथ महात्मा हंसराज ने अपनी आर्य्यजाति की सभ्यता पर व्यर्थ लगाये हुये कलंक को दूर किया। स्कूल से निकल जाना तो एक नितान्त सामान्य बात थी—जब कि यहाँ के बालकों ने धर्म के लिये प्राणों का देना भी बायें हाथ का काम समझा॥

महात्मा जी हेडमास्टर साहब की आज्ञानुसार २ दिन स्कूल में नहीं गये क्योंकि गुरु की आज्ञा मानना महात्माजी ने अपना परम कर्त्तव्य समझा। अन्ततोगत्वा तृतीय दिवस से फिर आपने स्कूल में जाना आरम्भ कर दिया—

वस्तुगत्या इस घटना ने आपके जीवन में एक आश्चर्य्यजनक परिवर्त्तन कर दिखाया अर्थात् यह विचार अत्यन्त दृढ़ता से आपके चित्त में स्थित हो गया कि पुराकालीन आर्य्यसभ्यता पर लगाये हुये कलंकों को अवश्य हटाना चाहिये और वेदों की पवित्र शिक्षा का प्रकाश समस्त भारत में फैलाने का पूर्ण उद्योग करना चाहिये। बस इस संकल्प का परिणाम यह हुआ कि भारत की प्राचीन सभ्यता को पुनर्जीवित कर संसार में वेदों के प्रचार करने वाले ऋषि दयानन्द सरस्वती के पवित्र मिशन आर्य्यसमाज की ओर आप का प्रेम जागृत हुआ और इस प्रकार आप प्रति सप्ताह आर्य्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन में सम्मिलित होने लगे।

श्रीमान् लाला साईं दास की संगति

हमको यहां पर राजर्षि भर्तृहरि का श्लोक स्मरण

आता है अतएव उसका लिखना परमावश्यक समझते हैं तद्यथाः—

जाड्यंधियो हरति सिञ्चति वाचिसत्यं,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्ति,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

अर्थः—बुद्धि की जड़ता को दूर करती, वाणी में सत्यता को सिञ्चन करती, मान को बढ़ाती, पाप को दूर करती है, चित्त को सर्वदा प्रसन्न रखती और दशों दिशाओं में विमल कीर्त्ति को सम्यक् प्रकार विस्तृत करती है। कहिये तो यह सत्सङ्गति पुरुष को क्या नहीं कर दिखाती—

प्रयोजन यह है कि जब सत्सङ्गति नीचातिनीच मनुष्य को भी मान मर्य्यादा के उच्च शिखर पर पहुँचा देती है तो एक स्वाभाविक धर्मनिष्ठ शान्त देश एवं जाति के मानमर्य्यादारक्षक को उत्तम बनाने में निस्सन्देह सुवर्ण में सुगन्धि क कार्य्य कर दिखाती है। वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही क्योंकि महात्मा जी के हृदय में देश धर्म और ज़ातिसेवा का अंकुर स्वभावतः ही विद्यमान था परन्तु लाला साईंदास की सत्सङ्गति ने उसको शीघ्र पल्लवित और फलित करने में अपूर्व कार्य्य किया। सौभाग्यवश इस समय आर्य्य समाज लाहौर की बागडोर श्रीमान् लाला साईंदास जी के ही अधिकार में थी अर्थात् आर्य्यसमाज लाहौर के सभापति उक्त लाला जी ही थे आपके सत्सङ्ग और साथ में प्रतिदिन बैठने उठने से महात्मा हंसराजजी को वैदिक धर्म एवं आर्य्य-

सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान होता रहता था। लाला साईंदास के स्वभाव और आचरण ने सर्वसाधारण के मन को मोहित कर दिया था और इसी कारण आपके इस विचित्र मनोहारि आकर्षण ने महात्मा हंसराज जी के मन को भी अपनी ओर आकर्षित कर वैदिक धर्म तथा आर्य्यसिद्धान्तों के पवित्र पक्के रंग में रंगना आरम्भ कर दिया। वस्तुगत्या यह रंग ऐसा चढ़ा कि अद्यावधि सवाया खिलता गया और यावज्जीवन खिला रहेगा और इसी कारण महात्माजी सब से अधिक कृतज्ञ लाला साईंदास के हैं और यदि आप सब से अधिक किसी पुरुष की प्रशंसा करते हैं तो स्वर्गवासी साईंदास की।

निस्सन्देह हम यह यहां कहे विना नहीं रह सकते कि आर्य्य समाज लाहौर में महात्मा हंसराज, श्रीमान् लाला लाजपत राय स्वर्गीय पं० गुरुदत्त जैसे पुरुषों को सम्मिलित करना और उनका लक्ष्य समाज की ओर आकर्षित करना जिससे संसार का महानुपकार और वैदिक धर्म का प्रचार हुआ किसका काम था यह उन्हीं स्वर्गवासी लाला साईंदास का कि जिनके महान् परिश्रम और उद्योग से ऐसे महानादर्श नवयुवक गणों के हृदय में धर्म का प्रेम उत्पन्न हुआ कि जिन नवयुवकों ने पंजाव प्रान्त की मृतप्राय जनता में एक वार फिर से नवीन जीवन का सञ्चार कर दिखाया।

इंट्रेंस की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर गवर्नमेण्ट कालेज में प्रविष्ट होना।

सन् १८८० ई० अर्थात् १६ वर्ष के आयु में महात्मा

हंसराजजी ने इंट्रेंस क्लास की परीक्षा उत्तीर्ण की। तद्नन्तर गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर के फर्स्ट इयर क्लास प्रविष्ट हुये कालेज में पहुँच कर श्रीमान् लाला लाजपतराय और पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी की संगति का सौभाग्य प्राप्त हुआ. थोड़े ही समय में इन तीनों नवयुवकों में परस्पर दृढ़ मित्रता हो गई। पाठक वह कैसा आनन्द का समय होगा जब कि तीनों नवयुवक विद्यार्थी एक ही विचार, एक ही मत एक ही धुनि को रखते हुये एक ही कक्षा में साथ २ शिक्षा प्राप्त करते हुये देश सुधार और धर्मप्रचार के सम्बन्ध में अपने २ विचारों द्वारा ऊहापोह कर के निश्चयात्मक मत स्थिर करते होंगे।

साप्ताहिक पत्र का सम्पादन

आर्य्य समाज के पवित्र सिद्धान्तों को सर्वसाधारण में प्रचार करने के निमित्त आर्य्यसमाज लाहौर ने निश्चय किया कि एक साप्ताहिक पत्र निकाला जावे। तदनुसार इस आवश्यकता को पूर्ण करने के अर्थ "*Regenerator of Aryavarta*" नामक साप्ताहिक पत्र अंग्रेज़ी भाषा में निकालना आरम्भ किया गया और इस पत्र का सम्पादन भार श्रीमान् ला० हंसराज जी और पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी को सौंपा गया जो अभी तक गवर्नमेण्ट कालिज के विद्यार्थी थे। इसी समय श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी अत्यन्त प्राबल्यता तथा और पूर्ण योग्यता से पाषाणादि मूर्त्तिपूजन और असत् मतों के विरुद्ध उपदेश देते थे। संस्कृत और देवनागरी भाषा के प्रचारार्थ आर्य्यसमाज सर्वोपरि

प्रयत्न कर रहा था। उर्दू और देवनागरी के प्रश्न पर मुसलमानों में बड़ा जोश फैला हुआ था। यूरोप अमेरिकादि पाश्चात्य देशों के विचारों को अग्रसर कर भारत निवासी आर्य्य सन्तान ईसाइयत की ओर विशेष रूप से झुक रहे थे। ऐसी कठिन समस्या के समय में महात्मा हंसराजजी और पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थियों ने देश व धर्म की उन्नति के लिये बहुत बड़ा कार्य कर दिखाया और बहुत सा अपना अमूल्य समय इन कार्य्यों में व्यय किया। महात्मा हंसराजजी गर्मियों के दिनों में साढ़े ग्यारह बजे दिन के कालेज बन्द होने के पश्चात् सीधे कालिज से प्रेस को जाते थे। वहां जाकर समाचार पत्र का प्रूफ संशोधन करते और लेख की न्यूनता में लेख लिख कर देते थे और २ बजे तक प्रेस में ही रहते थे। तदनन्तर घर पर आकर भोजन करते थे। इस प्रकार आपने विद्याध्ययन के समय में निस्स्वार्थ भाव से कार्य करके भारत का महान् उपकार किया।

ऋषि दयानन्द की मृत्यु और स्मारक का प्रयत्न

अक्टूबर सन् १८८३ ई० के आरम्भ में आर्य्य समाज लाहौर को तार द्वारा सूचना मिली कि श्रीस्वामीजी महाराज जोधपुर में घोररूप से रुग्ण हैं। इसी कारण लोग श्रीस्वामीजी को जोधपुर से अजमेर ले आये। तार की सूचना को प्राप्त कर लाला जीवनदासजी और पं० गुरुदत्तजी श्रीस्वामीजी को देखने के लिये अजमेर गये। वहां जाकर देखा तो श्री स्वामीजी की दशा नितान्त मरणासन्न थी। उनके समीप

श्रद्धालुभक्तों और दर्शकों की भीड़ एकत्रित थी, ऋषि ने शान्ति पूर्वक वेदों का पाठ और ईश्वर प्रार्थना करते हुये प्राणों का परित्याग किया।

डी० ए० वी० कालिज की स्थापना

जिस समय श्रीस्वामीजी की मृत्यु का दुःखद समाचार लाहौर में पहुँचा तो लाहौर के समस्त सामाजिक पुरुषों में महान् शोक छा गया। परन्तु दैव से किसी का क्या वश है? अन्त में धैर्य्य धारण कर परस्पर यह विचार प्रवृत्त हुआ कि श्रीस्वामीजी के स्मारक में लाहौर में एक कालिज खोला जावे जो वास्तव में श्रीस्वामीजी का स्मारक तो होगा ही, परन्तु साथ में उनके सिद्धान्तों का प्रचारक भी होगा। यह सम्मति सर्वसाधारण को अत्यंत उचित ज्ञात हुई और श्रीमान् लाला लाजपत रायजी से यह प्रार्थना की गई कि वह कालिज की स्कीम बना कर लाहौर की जनता के सम्मुख उपस्थापित करें।

इस स्मारक की स्थापना के शुभ सङ्कल्प की प्रसिद्धि आस पास के आर्य्य समाजों में बड़ी प्रावल्यता के साथ फैल गई और प्रत्येक समाज ने पूर्ण गौरव की दृष्टि से इस प्रस्ताव पर परामर्श किया और सोत्साह इसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न आरम्भ हुआ। सब से पूर्व श्रीमान् लाला लालचन्दजी एम० ए० वकील चीफ़ कोर्ट पंजाब ने चन्दे की एक सूची तैयार की फिर इस सूची को मुख्य मुख्य नगरों में घुमाया। इसका परिणाम यह हुआ कि अत्यन्त उद्योग करने पर भी चन्दा की संख्या केवल ३६००० रुपये ही हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि आर्य्य समाज लाहौर हतोत्साह होगया उसकी

समस्त आशायें निराशा में परिवर्त्तित हो गईं। चन्दा की न्यूनता के कारण समाज को अपने स्मारक रूप कालेज की प्रस्तावना पर अत्यन्त लज्जित होना पड़ा और समाज को पूर्णरीत्या यह विश्वास होगया कि यह महान् कार्य अब किसी प्रकार पूर्ण नहीं हो सकता।

परन्तु आप जानते हैं कि परमात्मा जिसका सहायक और संरक्षक होता है उसकी पूर्ति और रक्षा अवश्यम्भावी ही होती है। जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि :—

अरक्षितं तिष्ठति दैव रक्षितं
सुरक्षितं दैव हतं विनश्यति।
तिष्ठत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः,
कृत प्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति।

अर्थात् दैव रक्षित अरक्षित भी बच जाता है परन्तु सुरक्षित भी दैव हत नष्ट हो जाता है यथा दैव रक्षित वन में छोड़ा हुआ भी अनाथ नष्ट नहीं होता और वही दैव हत यत्न करने पर भी घर में जीवित नहीं रहता। इस लिये सामजिक सज्जनों ने निःस्वार्थ भाव से जगदीश्वर के एक मात्र साहाय्य का अवलम्बन करके देश और स्वधर्म की रक्षा के हेतु इस स्मारक के स्थापन करने का दृढ़ संकल्प किया था। परन्तु दैवात चन्दा की न्यूनता के कारण कुछ हतोत्साह अवश्य हो गये थे और इस विचार में निमग्न थे कि हे प्रभो व्रतपते! हम लोग किस प्रकार इस महान् कठिन व्रत का पालन कर सकेंगे। तथा किस प्रकार हम इसकी पूर्त्ति कर सकेंगे कि इतने में जगदीश्वर की असीम दयालुता और प्रेरणा से एक वीर नवयुवक इस व्रत के पूर्ण करने की आशा दिलाता

हुआ सामने आता है और सब को धैर्य बँधाता है कि मत चिन्ता करो परमात्मा सहायता करेगा। यह महान् कार्य अवश्य पूर्ण होगा. कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर विघ्नों की कदापि शङ्का न कीजिये। संसार में विघ्नों को देख अपने उद्देश को जो स्थगित कर देते हैं वे निस्संदेह नीच हैं।

वस्तुगत्या महाराज भर्तृहरिजी भी ऐसाही कहते हैं: यथा :—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन न नीचैः,
> प्रारभ्य विघ्न विहिता विरमन्ति मध्याः।
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
> प्रारभ्यचोत्तमजना न परित्यजन्ति॥

अर्थात् विघ्नों के भय से नीच मनुष्य किसी शुभ कर्म का अनुष्ठान नहीं करते और मध्यम कोटि के मनुष्य प्रारम्भ करके विघ्नों की उपस्थित में उस कार्य को छोड़ देते हैं। परन्तु उत्तम पुरुष बार बार विघ्नों के होने पर भी आरम्भ करके विना पूर्ति के कदापि नहीं छोड़ते। इस प्रकार उत्साह एवं उत्तेजना के दिलाने पर सामाजिकों की मुरझाई हुई आशालता पर अमृत वर्षा। फिर क्या था लोगों के हृदय पटल में उत्साह कर्मण्यता की झलक दिखाई देने लगी। उमङ्ग की लहरें उमड़ने लगीं और कार्यक्षेत्र में सोत्साह कार्य होने लगा।

हमारे पाठक आश्चर्य में निमग्न होंगे कि वह कौन नवयुवक था जिसने दलदल में फँसे गाड़ी के पहिये को एकदम बाहर कर दिया। लीजिये हम बताते हैं वह था हमारे पुस्तक का चरित नायक महात्मा हंसराज।

महात्माजी ने सन् १८८५ ई० में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों में आपका नम्बर दूसरा रहा क्योंकि नम्बर अव्वल श्री विद्यार्थी गुरुदत्त जी का था परीक्षोत्तीर्ण होने के पश्चात् ऊपर लिखे अनुसार ही आपने आर्य्य सामाजिक पुरुषों के हृदय में नवीनोत्साह का सञ्चार कर दिखाया और साथ ही इनके हृदय में भी यह चिन्ता उपस्थित हुई कि क्या कारण है कि इतना उत्तम कार्य सफल नहीं होता—अहर्निश आप इसकी सफलता का प्रयत्न सोचने लगे।

श्रीमान् लाला मलकराज भल्ला का धार्मिक बल और अपने भ्राता के यज्ञानुष्ठान में सहायता

धन्य हैं वे भ्राता जो अपने भ्राता के कर्त्तव्य क्षेत्र में सहायक हो साथ देते हैं। आज कौन ऐसा पुरुष है जो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र के पवित्र इतिहास से अनभिज्ञ हो। महात्मा रामचन्द्र अपने पूज्य पिता की आज्ञा को शिरोधार्य्य मान १४ वर्ष के वनवास रूप महान् यज्ञ के अनुष्ठान का दृढ़ सङ्कल्प कर, कर्त्तव्य पथारूढ़ होते हैं तो साथ ही भ्राता लक्ष्मण भी उनकी सहायता के लिये अपने ऐहिक सुखों पर लात मार उद्यत होता है। भ्राता लक्ष्मण अपने जीवन की भी नितान्त चिन्ता नहीं करता परिणाम यह होता है कि युगुल भ्राता संसार के उपकार के लिये राक्षसों का वध करके देव मनुष्यादि के प्रीति भाजन बने। ठीक उसी प्रकार आर्य्य जाति के उत्थान का दृढ़ संकल्प करते हुये महात्मा हंसराजजी अपने ज्येष्ठ

भ्राता लाला मलकराज भल्ला जी से ऋषि दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप कार्य की साफल्यता कैसे हो यह विचार करने लगे—लाला मलकराजजी ने प्रश्न किया कि अब आप क्या करेंगे—महात्मा हंसराजजी ने उत्तर दिया कि वस्तुतः मुझे सांसारिक मान प्रतिष्ठा की नितान्त इच्छा नहीं यदि हमारे कुटुम्ब का निर्वाह किसी प्रकार होजाय और हमको उसकी चिन्ता न रहे तो निस्सन्देह हम इस स्मारक पूर्णता रूप कठिन व्रत का पालन पूर्ण कर दिखाने को उद्यत हैं। हम अपना समस्त जीवन इस में लगा कर निश्चय इसको पूरा करेंगे। इस पर ला० मलकराजजी ने कहा कि प्रिय तात! कुटुम्ब के निर्वाह की चिन्ता का परित्याग करो हम समस्त कुटुम्ब का पालन कर लेंगे जाओ वत्स! सर्वात्मना इस कठिन व्रत का पालन करो परमात्मा तुम्हारी सहायता करे। बस फिर क्या था ज्येष्ठ भ्राता की आज्ञा रूप आशीर्वाद को प्राप्त कर महात्मा जी के आनन्द की सीमा न रही। जिस प्रकार रोगी को औषधि, दरिद्र को धन सुखद होता है उसी प्रकार महात्मा जी को ज्येष्ठ भ्राता जी की आज्ञा सुखकारी प्रतीत हुई। सच पूछिये तो महात्मा जी को कठिन व्रत पालन करने के लिये पूर्ण उद्यत किसने किया लाला मलकराज जी भल्ला ने, इसी लिये यह निस्सन्देह मानना पड़ेगा कि आर्य्य जाति के उत्थान और अभ्युदय में प्रशंसित लालाजी ने भी एक महत्व पूर्ण कार्य करके देश के आशीर्वाद के पात्र बने हैं।

महात्मा हंसराजजी का आत्मसमर्पण और जाति सेवा की कठिन प्रतिज्ञा कतिपय दिवस के पश्चात् आर्य्य समाज

लाहौर के प्रथम वार्षिकोत्सव का सुअवसर प्राप्त हुआ यद्यपि सामाजिक सभासद् उत्साह और साहस से अपना कार्य कर रहे थे। तथापि उनके चित्त में निराशा की घटा छाई हुई थी और सोच रहे थे कि जहां एक बड़े स्कूल का स्थापित करना ही महान् दुस्तर कार्य है वहां कालेज का स्थापन करना तो एक बहुत बड़ी बात है। इस प्रकार का विचार सामाजिक भद्र पुरुष कर ही रहे थे कि श्रीमान् ला० हंसराज जी आर्य्य समाज के प्लेट फार्म पर आकर खड़े हुये और कहने लगे—

शेर—हिम्मत को न हारो करो स्कूल का सामां।
जारी करो इस काम को तुम भी किसी अनवां॥
ख़िदमत करूंगा जान में जबतक है मेरी जां।
मर जाऊंगा छोड़ूंगा नहीं भूल के मैदां॥
ख़िदमत करूंगा आप की आराम न लूंगा।
आशा यश ज़ाती का कभी नाम न लूंगा॥

पाठकवर्ग! महात्माजी की इस उच्च घोषणा ने अधीर एवं व्याकुल चित्त सामाजिकों के हृदय में पूर्णरीत्या धैर्य बंधाया अगाध महा समुद्र में डूबते हुओं के लिये सचमुच जहाज़ मिल गया चतुर्दिक् आनन्द ही आनन्द दृष्टिआने लगा बस इसके पश्चात् पूर्ण उत्साह और साहस से पुनः कार्य्यारम्भ हो गया और आगामी जून सन् १८८६ ई० में स्कूल खोल दिया गया और स्कूल के आनरेरी हेड मास्टर महात्मा हंसराजजी नियुक्त किये गये। थोड़े ही दिनों में महात्माजी की कार्य दक्षता और योग्यता ने स्कूल को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया यहां तक कि

सन् १८८८ ई० में ही एफ० ए० क्लास खोलना पड़ा यद्यपि इस समय महात्माजी ने कालिज के लिये जीवन दान नहीं दिया था तथापि यही उचित ज्ञात किया गया कि उन्हीं को आनरेरी प्रिंसपल नियत किया जावे।तदनुसार महात्माजी कालिज के अवैतनिक प्रिंसपल नियुक्त किये गये परन्तु साथ ही दो वर्ष तक अंग्रेज़ी भाषा की प्रोफ़ेसरी का कार्य भी करना पड़ा । तदनन्तर दो वर्ष के पश्चात् अर्थात् १८९० ई० में वी० ए० क्लास का फर्स्ट और सेकिन्ड इयर भी खोलना पड़ा और इसके पश्चात् संस्कृत का एम० ए० क्लास भी खोल दिया गया।

इस कालेज सम्बन्धी समस्त कार्य करने के अतिरिक्त महात्मा जी सामाजिक कार्यों में भी अपने अमूल्य समय का बहुत बड़ा भाग लगाया करते थे। साथ ही संस्कृत विद्या के पढ़ने की अत्यन्त रुचि जागृत हुई । अतएव संस्कृत पढ़ने में प्रतिदिन अपना समय व्यय करते थे क्योंकि आप को धार्मिक साहित्य के साथ अत्यन्त प्रेम था । प्रयोजन यह कि कालिज एवं सामाजिक कार्यों के करने और संस्कृत तथा धार्मिक साहित्य के अध्ययनादि के कारण आप के स्वास्थ्य को अत्यन्त हानि पहुँची यहां तक कि डाक्टरों ने एक मत होकर महात्माजो को सम्मति दी कि आपको वस्तुगत्या राजयक्ष्मा हो गया इस पर आपको आपके मित्रों ने विवश किया कि अव थोड़े दिन का अवकाश लेकर लाहौर के बाहर रहें परन्तु "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" इस मानव स्मृति के वचनानुसार जो धर्म

की रक्षा करता है धर्म उसकी अवश्य रक्षा करता है जब महात्माजी का समस्त जीवन ही धर्म के लिये अर्पण है तब कैसे सम्भव था कि आपको कष्ट होता । धन्य है उस जगदीश्वर को जिस की असीम दयालुता से महात्मा जी सर्वथा नीरोग हो गये डाक्टरों का विचार भ्रम मात्र निकला वास्तव में कालिज को खुले आज ३१ वर्ष के समीप होते हैं परन्तु महात्मा हंसराजजी ने जिस कार्यकुशलता के साथ महान् कष्ट और असाधारण व्रत को पालन करते हुये अपना कार्य सम्पन्न किया है यह उनकी पूर्ण योग्यता और अभिज्ञता का सम्यक् प्रकार परिचायक है। कालेज के सुप्रबन्ध की प्रशंसा तो उसकी सफलता स्वयमेव बतला रही है पूर्ण योग्य से योग्य प्रबन्धक से जाकर पूछिये तो वह यही कहता है कि कालेज का इससे बढ़कर सुप्रबन्ध हो नहीं सकता ।

महात्माजी स्वभाव के अत्यन्त नम्र और शान्त हैं आप के साधु भाव का प्रभाव स्वयमेव लेखक के हृदय पर एक बार महात्माजी के दर्शन करने पर पड़ चुका है। नियम पालन और निरत परिश्रम के लिये निस्सन्देह आप एक महान् आदर्श हैं। आपके आत्म बलिदान और पवित्राचरण का विचित्र प्रभाव समस्त स्कूल और कालेज भले प्रकार दिखाई देता है। विद्यार्थी (शिष्य) आपके अनन्य भक्त हैं साथ ही अपने गुरु की पवित्रता, विद्वता और अपूर्व त्याग इत्यादि की शतमुख प्रशंसा करते हैं ।

कालेज में प्रिंसपल का कार्य करने के अतिरिक्त

ऐतिहासिक और राजकीय मितव्ययता के विषयों पर प्रत्येक क्लास (कक्षा) में व्याख्यान दिया करते थे तथा समस्त क्लासों की धार्मिक और आचरणीय शिक्षा का भार भी महात्माजी के ही ऊपर था।

सन् १८८९ ई० में श्रीमान् लाला साईंदासजी का स्वर्गवास होगया। इस पर सब ने एक मत होकर आर्य्य समाज लाहौर और आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का सभापति श्रीमान् महात्मा हंसराजजी को निर्वाचित किया क्योंकि वह अपनी पूर्ण योग्यता के कारण इस महान् पद के लिये सर्व प्रकार योग्य थे इस प्रकार कई वर्ष तक आपने सफलता पूर्वक इस सेवा कार्य को पूर्ण किया।

परन्तु अन्त में कतिपय आर्य्यम्मन्य सज्जनों का हृदय इसको सहन न कर सका, और उनके हृदय में स्वार्थ परता और आत्मगौरव का अभिमान जागृत हुआ परस्पर ईर्षा डाह और वैमनस्य का समुद्र उमड़ उठा फिर क्या था इसने लाहौर में आर्य्य समाज को दो भागों में विभक्त किया।

महाभारत के समय से ही भारत वर्ष में स्वार्थपरता आदि दुर्गुणों ने अपना अड्डा जमा लिया था जो अद्यावधि भारत को पीड़ित कर रहा है। क्या यह महान् शोक और लज्जा की बात नहीं है कि जिस आर्य्य समाज को ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन की आहुति देकर स्थापित किया है और जिसका उत्तराधिकार आर्य्य सामाजिक सज्जनों को देकर ऋषि स्वर्ग सिधारा। परन्तु शोक कि ऋषि दयानन्द के पवित्र मिशन आर्य्य समाज को स्वार्थी ईर्षक मनुष्यों ने यथा शक्ति समाप्त करने में कोई प्रयत्न शेष न छोड़ा यही

कारण था कि लाहौर में कुरीत्या चलते हुये आर्य्य समाज के कार्य को स्वार्थियों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया और वह स्वार्थ परता लाहौर का अद्यावधि पीछा छोड़ना नहीं चाहती क्योंकि महात्माजी के समय में तो स्वार्थ और ईर्षा आर्य्य समाज के दो विभाग ही कर सकी परन्तु आज आर्य्यसमाज के उस समाज का कि जिसने वेद प्रचार का ठेका लिया था और जिसमें राय ठाकुरदत्त धवन जैसे योग्य विचारशील सभ्य उपस्थित हों कि जिन्होंने वैदिक धर्म नामक जैसी सुपुस्तकों की रचना की हो अथवा जिनके अधिकार में न्यूनातिन्यून पंजाब प्रान्त के सुधार का प्रबन्ध सौंपा गया हो वेही अधिकारीगण सभापति की पदवी के लिये लट्ठ चलावें और कोई मन्दिर आर्य्यसमाज को ही बेंच कर नष्ट कर देवें क्या यह महान् शोक और लज्जा की बात नहीं है। वास्तव में हम यह स्पष्ट कहते हैं कि जिन संस्कारों को लेकर महात्मा हंसराज के समय में यह द्वितीय समाज आविर्भूत हुआ था। वे स्वाभाविक विचार वा संस्कार कैसे पृथक् होते। अन्ततो गत्वा वे ही स्वार्थ परता के पूर्व संस्कार आज आर्य्यसमाज लाहौर में फल लाये और इसी स्वार्थ परता ने आर्य्यसमाज मन्दिर को विक्रय करने पर भी उद्यत कर दिया। शोक! परमात्मा हमारे आर्य्य सुजनों को सुबुद्धि दे इससे अधिक हम कुछ नहीं कह सकते। अस्तु

लाहौर आर्य्य समाज के जब दो भाग हो गये—एक कालिज पार्टी और एक वेद प्रचार पार्टी—तब जिस स्वार्थ ने एक घर के दो घर किया उसने और किया सो तो किया

हीं परन्तु उत्तम कार्य जो महात्मा हंसराजजी कर रहे थे। उसमें विघ्न करने की प्राणपण से चेष्टा की गई। महात्मा हंसराजजी को कलङ्कित करने के लिये कतिपय उत्सव किये गये। गाली गलौज करना तो एक साधारण बात थी, आपके विरुद्ध समाचार पत्र निकाले गये, कतिपय मनुष्य केवल इस बात के लिये नियुक्त किये गये कि वे यत्र तत्र भ्रमण कर आपको कलङ्कित करें। प्रयोजन यह कि आपके विरोध में यथाशक्य जो कुछ सम्भव था सब किया गया, परन्तु धन्य है महात्मा हंसराज को। वे अपनी परीक्षा में पूर्णरीत्या उत्तीर्ण हुये। आपको ये समस्त विघ्न लक्ष्य से पतित न कर सके। आपने इन समस्त बातों को शान्ति पूर्वक सहन करते हुये संसार को दिखला दिया कि जिसको जिस कार्य की सच्ची लगन होती है उसको संसार के विघ्न और बाधायें कुछ हानि नहीं पहुँचा सकतीं और न उसको अपने लक्ष्य से ही भ्रष्ट कर सकती हैं और जो कृत्रिम बनावटी रूप धारण कर किसी स्वार्थवश संसार को दिखाने के लिये किसी कार्य का अनुष्ठान करते हैं वे थोड़े ही से विघ्नों के उपस्थित होने पर अपने बचने का मिस ढूंढ़ कर चट कार्य छोड़ बैठते हैं। बस! इसी सच्ची लगन और धुनि के कारण अपने विरोधियें के विरोध की कुछ भी चिन्ता न कर महात्मा हंसराजजी के साथ एक प्रकार का उपकार किया। क्योंकि जिस प्रकार सुवर्ण को जितना ही अग्नि में तपाया जाय उतना ही विशुद्ध रूप धारण करता है एवमेव विरोधियों के उत्कट विरोध और उद्दण्डता ने महात्माजी को अपने व्रत के पालन में और भी अटल कर दिया यहां तक कि जो सुस्वादु मिष्ठफल आज

डी० ए० वी० कालिज दे रहा है यह उसी विरोध का शुभ परिणाम है। महात्माजी ने उन विरोधी सज्जनों के अनुचित कार्य को देखते सुनते हुये भी न देखा और न सुना क्योंकि मन एक समय में दो कार्य नहीं कर सकता यातो इन विरोधियों के किये हुये विघ्नों के दूर करने की चिन्ता में अपना समय नष्ट करते अथवा कालिज के चलाने का ही सुप्रबन्ध करते। इसी लिये स्पष्ट कहना पड़ता है कि महात्मा जी अपनी दीक्षा में दीक्षित हो चुके थे। उनके पास अब समय कहां था कि वे इनकी चिन्ता करते महाराज भर्तृहरिजी ने ऐसे ही दृढ़ संकल्प, दृढव्रत और धीर पुरुषों के लिये एक श्लोक कहा है। हम उसको उपयोगी समझ कर यहां उद्धृत करते हैं तद्यथाः—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात् नीति निपुण पुरुष चाहे निन्दा करे अथवा स्तुति, चाहे समस्त संसार का धन प्राप्त हो जावे अथवा जो पास है वह भी समस्त नष्ट हो जावे, चाहे आज ही मरण हो जावे अथवा युग के पश्चात् मृत्यु आवे परन्तु धीर पुरुष इन संसारिक विघ्न बाधाओं की किञ्चत् भी चिन्ता न करते हुये अपने सत्यपथ से विचलित नहीं होते वस्तु-गत्या। महात्मा हंसराज इसके सच्चे उदाहरण हैं।

निस्सन्देह यदि महात्माजी इनकी चिन्ता करते तो

आर्य्य समाज का जो वृहत्कार्य इस समय दृष्टिगोचर हो रहा है कदापि दिखलाई न देता। वस्तुगत्या महात्मा जी ने पूर्णरीत्या यह समझ लिया था कि देश जाति और धर्म हमारा है और हम देश जाति और धर्म के हैं। अतएव आपने विघ्न और वाधाओं की नितान्त चिन्ता नहीं की प्रत्युत समस्त विचार शील और न्यायी सज्जन इसके साक्षी हैं कि महात्माजी ने अनेक विघ्नों के उपस्थित होते हुये भी कलङ्कित करने वाले विरोधियों के प्रत्युत्तर में न कभी कुछ कहा और न कभी एक शब्द भी लिखा और न कभी किसी से उनका उलहना दिया किन्तु शान्त होकर निश्चिन्त अपने कार्य में लगे रहे इसका परिणाम यह हुआ कि जो मनुष्य इनके नितान्त विरोधी थे और भर २ पेट गालियां देते थे वे ही आज आपके सच्चे मित्र और सेवक बने हुये हैं। अस्तु

प्रयोजन यह है कि जब स्वर्थपरता और पारस्परिक ईर्षा द्वेष से लाहौर में आर्य्य समाज के दो भाग हो गये तब महात्माजी ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिये श्रीदयानन्द एंग्लोवैदिक कालिज से पृथक् आर्य्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिन्ध, विलोचिस्तान की स्थापना की और इसी के साथ श्रीमान् लाला लाजपतराय की सहायता से आर्य्यगज़ट नामक साप्ताहिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया गया, और उसका सम्पादन भार भी अपने ही ऊपर लिया इस प्रकार व्याख्यानों और लेखों द्वारा सम्यक् रीत्या वदिक धर्म का प्रचार होने लगा तथा आर्य्य मैसेंजर अँग्रेज़ी पत्र की भी विधि पूर्वक उन्नति की गई। आपने इतना

कार्य पर्याप्त नहीं समझा किन्तु इतस्ततः आर्य्य समाजों के उत्सवों में भी जा जा कर व्याख्यानादि द्वारा प्रचार करना आरम्भ किया। वास्तव में यह ऐसा कठिन समय था कि जब आर्य्य समाज का सर्वसाधारण विश्वास नहीं करते थे और न आर्य्य समाज के हाथ में कोई रुपया देना ही उचित समझता था। परन्तु महात्मा हंसराज के सच्चे आत्म-बलिदान ने समस्त मनुष्यों के हृदय में विश्वास उत्पन्न कर दिया। डी० ए० वी० कालिज के आशातीत सुप्रबन्ध ने लोगों के चित्तों को अपनी ओर आकर्षित किया और इस लिये अल्प काल ही में लोगों का अविश्वास विश्वास के रूप में परिवर्त्तित हो गया। निदान महात्मा जी के सद्-नुष्ठान से अब वह समय आया कि जहां एक स्कूल या कालिज का होना असम्भव सा प्रतीत होता था वहां स्थान पर डी० ए० वी० स्कूलों की स्थापना आरम्भ होने लगी और उन स्कूलों की नींव महात्मा जी के हस्तों द्वारा आरोपित की गईं। इस प्रकार समस्त पंजाब प्रान्त में आर्य्य समाज सर्व प्रिय हो गया। यहां तक कि जो मनुष्य आर्य्य समाज को एक रुपया देना भी अनुचित ज्ञात करते थे वे ही अब आर्य्य समाज को एक साथ सहस्र २ रुपया सोत्साह देकर सहायता करने में अपना परम सौभाग्य मानते हैं।

महात्माजी ने, इस प्रकार अपने जीवन के अमूल्य २५ वर्ष डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसपल पद पर कार्य करते हुये सानन्द व्यतीत किये वस्तुगत्या इस सुदीर्घ काल में अनेकों ऐसी विचित्र घटनायें हुईं जो महात्माजी

के पवित्र स्वभाव और श्रेष्ठाचार को सम्यक् प्रकार दर्शा रही हैं। आपने किस प्रकार अनेकों कष्ट सहन करते हुये अपने प्राणों के समान अत्यन्त प्रिय डी० ए० वी० कालेज को आशातीत उन्नति के शिखर पर आरोहित किया है।

महात्मा हंसराज के त्याग के अपूर्व उदाहरण

एक बार एक धनाढ्य साहूकार आपके दर्शन के लिये आया उस समय आप एक सामान्य कम्बल ओढ़े हुये बैठे थे और वह कम्बल भी कई स्थानों पर फटा हुआ था। साहूकार ने सभीत आपके कमरे में प्रवेश किया परन्तु आपने उसको महान् आदर पूर्वक सम्बोधन कर बैठने के लिये आज्ञा दी। परन्तु इतने पर भी उस साहूकार ने महात्मा जी के सम्मुख मान्यदृष्टि रखते हुये पृथ्वी पर ही बैठना चाहा परन्तु आपने साग्रह आदर पूर्वक तख़्त पर बैठने को कहा। निदान वह साहूकार तख़्त पर बैठ गया और कुछ समय तक आप से बैठा २ बातें करता रहा और साथ ही बैठा हुआ ये विचार करता रहा कि महात्मा हंसराज का तो बड़ा नाम हो रहा है यह तो बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य हैं परन्तु इनकी रहन सहन नितान्त सामान्य है। जिस मकान में आप बैठे हुये थे वह नितान्त सामान्य घर था। उसमें थोड़ी सी कुर्सियां पड़ी हुईं थीं। दीवालों पर किसी प्रकार की सजावट नहीं थी। केवल स्वामी दयानन्द सरस्वती का चित्र और वे अभिनन्दन पत्र अथवा प्रशंसा पत्र जो आपको भिन्न २ स्थानों से दिये गये उस दीवाल पर अवश्य लगे हुये थे—साहूकार के चित्त पर महात्मा जी के

इस साधारण जीवन का इतना विचित्र प्रभाव पड़ा कि जिसका उल्लेख करना लेखनी की शक्ति से सर्वथा बाह्य है और इस प्रकार महात्मा जी को एक साधारण कम्बल ओढ़े देख कर उस साहूकार का चित्त दया से आर्द्र हो उठा अन्त में आप से आज्ञा लेकर चला आया और उसके दूसरे दिन उसने बाज़ार में जाकर अत्युत्तम पश्मीना के दो शाल मोल लिये और फिर महात्मा जी के पास आकर उनके चरणों में भेंट किये और कहा कि आप इस फटे कम्बल को उतार दीजिये और यह शाल ओढ़ लीजिये।

इस पर महात्मा हंसराज जी ने उस साहूकार के श्रद्धालु भाव की अत्यन्त प्रशंसा की और कहा कि मुझे तो इस कम्बल में ही आनन्द प्राप्त होता है बहुत दिनों से यह कम्बल हमारे समीप है इस लिये इसने हमारे शरीर को अत्यन्त सुख पहुँचाया है भला इसको कैसे पृथक् करदूँ—इस लिये कृपा कर आप इन दो शालों को ले जाइये परन्तु साहूकार ने बार २ साग्रह निवेदन किया कि आप इन को स्वीकार कर लीजिये इस पर पुनरपि महात्मा जी ने कहा। कि मेरा इन पर कोई स्वत्व नहीं अतएव मैं विवश हूँ कि इनको स्वीकार नहीं कर सकता यदि आप अत्यधिक आग्रह करते हैं और इन शालों को अवश्य ही देना चाहते हैं तो मैं यह आप के शालों को स्वीकार कर कालेज फण्ड में दान दे दूँगा। और अन्त में ऐसा ही किया।

महात्मा जी के साधारण जीवन से अद्भुत परिवर्त्तन

स्वर्गवासी पं० रलयाराम जी बजवाड़ा निवासी से यह बात ज्ञात हुई कि रावलपिंडी शहर में एक कट्टर

सनातन धर्मावलम्बी पुरुष रहा करता था अपने घर में उसमें शालिग्राम आदि मूर्त्तियों की स्थापना कर रक्खी थी और वह प्रतिदिन उन पाषाणादि मूर्त्तियों की कई घण्टे पूजा किया करता था और यदि आर्य्य सामाजिक पुरुष का उसको स्पर्श हो जाता था तो जब तक स्नान नहीं कर लेता था तब तक भोजन नहीं करता था। परन्तु कुछ समय के पश्चात् उसका पुत्र डी० ए० वी० आर्य्य स्कूल में भरती होकर पढ़ने लगा इसके कारण उसका धार्मिक द्वेष कुछ कम हो गया। और थोड़े काल के पश्चात् जब उसके पुत्र ने आर्य्य स्कूल की पढ़ाई समाप्त करली तब डी० ए० वी० कालिज लाहौर में प्रविष्ट होने के लिये आया और वह भी अपने पुत्र के साथ भर्ती कराने के लिये लाहौर आया। यहां आकर उसने महात्मा हंसराज जी के दर्शन करने का पूर्ण विचार किया और इसीलिये वह एक दिन प्रातः-काल महात्माजी के स्थान पर जाने के लिये चला। परन्तु मार्ग में उसके चित्त में भांति भांति के विचार उठ रहे थे मन में कहने लगा कि श्रीमान् महात्मा हंसराज जी एक बड़े कालिज के प्रिंसपल हैं उनके रहने की कोठी बहुत बड़ी सुस-ज्जित होगी। बहुत से नौकर होंगे, कोठी के चारों ओर बहुत बड़ा उद्यान होगा। मुझे उस कोठी के भीतर जाने की आज्ञा मिलेगी या नहीं, महात्माजी के दर्शन होंगे या नहीं इत्यादि बातें सोचते सोचते २ महात्मा जी के स्थान पर पहुँच गया, वहां जाकर उसने अपने चित्त की सोची हुई बातों के नितान्त विरुद्ध एक अद्भुत दृश्य देखा। महात्मा जी सन्ध्या आदि कर्म से निवृत्त होकर एक तख्त पर बैठे

स्वाध्याय कर रहे थे। इस मनुष्य ने आगे बढ़ कर प्रणाम किया, महात्माजी ने उसको कुर्सी पर बैठने के लिये कहा। इसपर वह कुर्सी पर बैठ गया और बैठ कर उसने कमरे के चारों ओर दृष्टि प्रसारित की, परन्तु उसके मन में क्या २ विचार व भाव उत्पन्न हुये और चुपचाप बैठे हुये क्या २ सोचता विचारता रहा यह ईश्वर जाने जब कुछ देर तक यों ही चुप बैठा रहा और मुख से एक शब्द भी न बोला तब महात्मा जी ने ही स्वयं वार्त्तालाप आरम्भ किया और थोड़ी देर तक परस्पर बात चीत होने के पश्चात् वह वहां से उठकर चला आया।

महात्मा जी के दर्शन कर और उनकी सात्विक वृत्ति को सत्सङ्गति के कारण एक कट्टर सनातन धर्मी की जीवनी नितान्त परिवर्तित हो गई। और वह जहां घोर सनातन-धर्मी बना हुआ था उसके स्थान में पूर्ण दृढ आर्य्य बन गया सत्य है महाराज भर्तृ हरि जी कहते हैं कि:—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा,
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण,
कङ्कोलनिंबकुटजा अपि चन्दनाः स्युः॥

अर्थात्—उस सोने के सुमेर पर्वत से हमें क्या, तथा चान्दी के कैलाश पर्वत से भी हमको क्या प्रयोजन कि जिसके आश्रित वृक्ष निरन्तर जैसे के तैसे ही वृक्ष बने रहते है। हम तो मलयगिरि पर्वत को ही श्रेष्ठ और सर्वोपरि मानते हैं

कि जिसका आश्रय कर कङ्कोल, नींव और कुटजादि वृक्ष भी चन्दन ही हो जाते हैं।

प्रयोजन यह है कि यदि सज्जन धर्मात्मा विद्वान् की संगति होने पर भी मूर्ख नहीं सुधर सकते तो मानना पड़ेगा कि वह धर्मात्मा हृदय से धर्मात्मा नहीं किन्तु संसार के दिखाने के लिये वाह्यवृत्ति से धर्मात्मा है। अतएव निस्सन्देह यह अद्भुत घटना स्पष्ट बतलाती है कि महात्मा हंसराज जी की सभी वृत्तियां और धुनि सत्यता के आधार पर प्रतिष्ठित हैं और इसी कारण निम्न लिखित वाक्य के अनुसार कि:—["सत्यमेवजयति नानृतम्" सत्य का सदा जय होता है] महात्माजी महान् से महान् कार्य को आरम्भ करके उसकी सफलता को पूर्णतया प्राप्त कर सके और इसी प्रकार सदा प्राप्त करते रहेंगे, अस्तु।

इस प्रकार महात्मा जी की अल्पकालीन सङ्गति के लाभ से वह रावलपिण्डी का कट्टर सनातन धर्मी पूर्ण आर्य्य बनकर अपने शहर रावलपिण्डी को लौट गया और वहां जाकर सन्ध्योपासन और हवनादि नैत्यिक कर्मों को सीख कर प्रति दिन सन्ध्योपासनादि करने लगा। एक दिन उसी के घर के पास होकर एक आर्य्य सामाजिक सज्जन निकला तो उसने क्या सुना कि उसके घर में से हवन की सुगन्धि और वेदमन्त्रों के उच्चारण की ध्वनि सुनाई दे रही है। इस विचित्र दृश्य को देख कर वह महाशय रुक गये और यह सोचने लगे कि यह तो एक परम विरोधी कट्टर सनातन धर्मी का स्थान है यहां से यह ध्वनि कैसी? और यह सुगन्धि क्यों आ रही है? निदान आर्य्य सज्जन ने एक ऊंची

खिड़की से झांक कर देखा तो महात्मा हंसराज जी का चित्र एक दीवाल पर लगा हुआ दिखाई दिया अब इनके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा और निःशङ्क हो उसके गृह में चले गये और सीढ़ियों से चढ़कर जिस गृह में हवन हो रहा था वहां पहुँच गये। तो क्या देखते हैं कि उसका समस्त परिवार श्रद्धा पूर्वक बैठा हुआ हवन में सम्मिलित है तथा उस कोठे को समस्त भित्तियों पर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी, और महात्मा हंसराजजी आदि के चित्र लगे हुये हैं आर्य्य महाशय जी पूर्वतः उस पौराणिक महानुभाव से सम्यक् प्रकार परिचित थे अतएव सम्मुख होते ही उस पौराणिक से पूंछा कि कहो महात्मन् यह विचित्र परिवर्त्तन कैसे हो गया उसने सप्रेम उत्तर देते हुये महात्मा हंसराज के चित्र की ओर संकेत कर बतलाया कि इस महात्मा के दर्शनों में नहीं ज्ञात कितना जादू भरा था कि जब मैं उनकी कोठी में घुसने लगा तो पक्का सनातन धर्मी था परन्तु उनके दर्शन करते ही मेरे चित्त के भाव परिवर्त्तित हो गये यहां तक कि कोठी के बाहर मैं आर्य्य हो कर निकला इसका मुख्य कारण यह था कि मैंने विचार किया कि देखो यह कितना प्रसिद्ध एक उच्च विचार का महान् पुरुष है परन्तु इनका कितना शान्त चित एव सात्विक वृत्ति है कितना साधारण सा प्रतीत होता है इससे सम्यक् प्रकार स्पष्ट है कि आर्य्य-सामाजिक सिद्धान्त अवश्य सत्यतापूर्ण हैं बस उसी दिन से मेरे विचारों ने पलटा खाया और इसी लिये घर पर आते ही सबको आर्य्य भाषा (देव नागरी) सिखाना आरम्भ कर दिया। वह देखो सामने की अलमारी में समस्त आर्य्य सामाजिक पुस्तकें उप-

स्थित हैं। जिन पाषाणादि मूर्त्तियों को मैं प्रथम इष्टदेव मान बैठा था उनका सर्वथा परित्याग कर दिया।

निदान इसी प्रकार महात्मा जी अपने पवित्र आचरण और सद्व्यवहार से शान्ति पूर्वक अनेकों मनुष्यों के जीवन का सुधार करते रहे और कार्य्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो २५ वर्ष पर्य्यन्त कार्य्य कर सानन्द सफलता प्राप्त की और सन् १९११ ई० में डी० ए० वी० कालिज के प्रिंसपल पद का परित्याग किया। परन्तु कालिज परित्याग करते समय कालिज को पूर्ववत् पूर्ण योग्यता से चलाने के लिये एक योग्य पुरुष को उत्पन्न कर दिया। महात्माजी ने जिस समय कालिज छोड़ा उस समय समस्त देश चतुर्दिक् से साधुवाद और प्रशंसा से परिपूर्ण उनके जीवन की सफलता पर धन्यवाद सूचक पत्र भेजे गये। समाचार पत्रों ने धन्यवाद गान किया।

कालिज से पृथक् होकर महात्मा जी ने यह संकल्प कर लिया कि अब स्वतन्त्र होकर किसी दूसरे प्रकार से वैदिक धर्म का पूर्णरीत्या प्रचार करेंगे परन्तु विचारा कुछ और हुआ कुछ अर्थात् जिस कठिन व्रत को पूर्ण कर आपने अपूर्व सफलता लब्ध की अब उससे भी दुष्कर व्रत को पूर्ण करने के लिये महात्माजी बाधित किये गये अर्थात् डी० ए० वी० कालिज लाहौर की प्रबन्धकारिणी समिति के आप प्रधान निर्वाचित हुये क्योंकि इस समय इस कार्य के लिये सर्वोपरि पूर्ण योग आप ही ज्ञात किये गये।

इस पद को ग्रहण कर महात्माजी ने सुचारु रूप प्राबल्यता के साथ इसका कार्य्य प्रारम्भ कर दिया और दूर २ जाकर व्याख्यानादि द्वारा आपने वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ कर

दिया और साथ ही साथ कालिज के लिये सर्व प्रकार की सहायता प्राप्त करने लगे।

धार्मिक कार्य में एक महान् विघ्न

पाठकवर्ग!—"श्रेयांसि बहु विघ्नानि" अर्थात् श्रेष्ठ उत्तम कार्य में प्रायः विघ्न उठते हैं इस वाक्य के ऊपर सम्यक् विचार करने से प्रतीत होता है कि श्रेष्ठ कार्य में जो विघ्न उपस्थित होते हैं वे वस्तुगत्या विघ्न नहीं किन्तु कार्य-कर्ता की स्थिरता, दृढ़ता और सत्यसंकल्पों के परीक्षक होते हैं यदि कार्य्यार्थी पूर्ण दृढ़, स्थिर और सत्यसंकल्प वाला है तो ये विघ्न उसका बाल बांका नहीं कर सकते और यदि कार्यार्थी केवल लोक दिखावे के लिये अथवा आत्म-गौरव के लिये किसी कार्य का आरम्भ करता है तो वह कदापि इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकता निदान महात्मा हंसराज जी को इस कार्य में प्रवृत्त हुये देख विघ्नों ने परीक्षा आरम्भ की अर्थात् दैवात् महात्मा जी की धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुर देवी जी रोगग्रसित हुईं। कदा-चित् हमारे पाठक श्रीमती के कार्यों से अपरिचित होंगे अत-एव उनका परिगणन कराना इस अवसर पर परमावश्यक समझता हूं। पाठक यह अत्युक्ति न समझें कि बिना स्त्री के पति संसार में किसी भी कार्य को निर्विघ्न नहीं कर सकता और इसी लिये धर्मानुगामिनी पत्नी पति के कंटकाकीर्ण मार्ग को निष्कंटक कर पूर्ण सहायता प्रदान करती है एवमेव श्रीमती ठाकुर देवी जी पूर्ण पतिभक्ता सदा पति की आज्ञा कारिणी पूर्ण धर्मनिष्ठ थीं अपने पतिदेव के समान आप

भी अपने जीवन का अधिक भाग धार्मिक कार्य्यों में व्यय करती थीं। आर्य्य स्त्री—समाज लाहौर का विशालमन्दिर आपके ही उत्साह और सहायता से बन कर सम्पन्न हुआ है। आर्य्यस्त्रीसमाज लाहौर की उन्नति और अपूर्व कार्य-सफलता प्राप्त कराना इसी देवी का कार्य था। यद्यपि श्रीमती के रुग्ण होने पर और दिन प्रति दिन नैर्बल्यता बढ़ने के कारण महात्मा जी को चिन्ता ने अवश्य बाधित किया जो वास्तव में मनुष्योचित कर्त्तव्य था तथापि समयोचित प्रतीकार आदि करते हुये सामान्य चिन्ता के अतिरिक्त अपने कर्त्तव्य कर्म से कदापि च्युत न हुये और "विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा" अर्थात् विपत्ति में धैर्य और ऐश्वर्य प्राप्ति पर क्षमा करना यह महात्मा जनों का स्वाभाविक धर्म है इसी वचनानुसार पूर्ण शान्ति और धैर्य के साथ अपने कर्त्तव्य पथ में पूर्ववत् अग्रसर बने रहकर विघ्नो की परीक्षा में पूर्णरीत्या उत्तीर्ण हुये।

किसी कवि का वचन है किः—

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्वणस्य।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति॥

अर्थात् जब तक एक दुःख रूपी समुद्र के पार नहीं पहुँच पाते कि तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है प्रायः छिद्र होने पर अनर्थ बहुत हुआ करते हैं।

उपर्युक्त कवि का वचन आज हमारे चरितनायक महात्मा हंसराज के ऊपर सम्यक् प्रकार संघटित होता है क्योंकि इधर महात्मा जी की धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुरदेवी जी पूर्णतया रुग्ण थीं उधर उसी समय २० फर्वरी सन् १८९४

ई० को एक इन्सपेक्टर पुलिस और एक सब-इन्सपेक्टर पुलिस महात्मा जी के गृह पर तलाशी का वारंट लेकर आया और आप के ज्येष्ठ पुत्र श्री लाला बलराज जी के कमरों की तलाशी [अन्वेषणा] ली गई तथा साथ ही लाला बलराज जी को पुलिस ने अपने अधिकार में कर लिया तदनन्तर देहली में उक्त लाला जी पर षड्यन्त्र का अभियोग चलाया गया। लाला बलराज जी की तलाशी और गिरफ्तारी से समस्त देश में कोलाहल मच गया सारे देशमें दुःख के बादल उमड़ आये परन्तु महात्मा जी अपने लक्ष्य वा अपने कर्त्तव्य से तिल मात्र भी विचलित न हुये किन्तु पूर्ववत् स्थिर चित्त से इस दुःख निवृत्ति का यथाशक्ति उपाय करते हुये अपने कार्य्यक्षेत्र में दृढ़ता से डटे रहे। ये ही विचित्र घटनायें महात्मा जी के सच्चे धार्मिक प्रेम और सच्ची धार्मिक लगन की परिचायक हैं एक कवि कहता है किः—

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिः भवति पङ्कजे कोषनिबद्धः॥

अर्थात् निश्चय कर संसार में बन्धन बहुत हैं परन्तु प्रेम की रस्सी का बन्धन सबसे विचित्र है, क्योंकि जो भौंरा कठिन से कठिन बांस की गांठ को काट कर पार कर देता है वही भौंरा प्रेमवश कोमल कमल के फूल में बन्द हो जाता और उसको काट कर बाहर नहीं निकल सक्ता। इसी प्रकार जिसको सच्ची धार्मिक लगन होती है उसको सांसारिक दुःख कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सक्ते हैं फिर यह कब सम्भव था कि ऐसे दुःख सच्चे धार्मिक प्रेमी महात्मा हंस-राज को अपने लक्ष्य से विचलित कर सक्ते।

इस दुःखमय समय की उपस्थिति में ऐसी कई आश्च-र्यमय घटनायें हुईं जो महात्मा जी की महत्ता और आचरण दृढ़ता की पूर्णतया साक्षी देती हैं इनमें से सर्वोपरि प्रधान घटना महात्मा जी का अपूर्व त्याग है अर्थात् उक्त अभियोग के समय पर महात्मा जी के श्रद्धालु भक्तों ने रुपयों की थैलियां भेट में उपस्थित कर प्रार्थना की भगवन्! यह रुपया आपको अभियोग की सहायता में दिया जाता है परन्तु महात्मा जी ने सधन्यवाद उन को लौटा दिया और लेना नहीं स्वीकार किया।

हृदय विदारक दृश्य

इधर प्राणप्रिय ज्येष्ठ पुत्र ला० बलराज जी को गिरफ्तार हुये पांच मास के समीप व्यतीत हुये उधर श्रीमती ठाकुर देवी जी की रुग्णावस्था प्यारे पुत्र की विपत्ति के कारण दिन प्रति दिन बढ़ती चली गई यहां तक कि मरणासन्न हो मृत्यु शय्या के अति निकट पहुँच गईं कारण यह कि प्रथम तो रोग ही कठिन दूसरे पुत्र की विपत्ति और उसका वियोगज दुःख परिणाम यह हुआ कि जब श्रीमती को पूर्ण विश्वास हो गया कि मेरा जीवन अब स्थित नहीं रह सकता और न मैं जी कर इस हृदयविदारक दुःख को सहन ही कर सकती हूँ तब श्रीमती ने अपनी अन्तिम इच्छा यह प्रकट की कि मुझे मेरे प्यारे बल-राज को एक बार दिखा दो। अतएव इसके लिये अदालत में प्रार्थनापत्र दिया गया कि ला०बलराज की माता मरणासन्न है इस लिये एक बार बिलखती हुई माता को प्राणाधार प्रियपुत्र बलराज को दिखा दिया जाय—इस पर अदालत ने सहर्ष यह स्वीकार कर आज्ञा दे दी। परन्तु पंजाब पुलिस ने इस

को अस्वीकार कर दिया और वह केवल इस बात पर कि हम इस का उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं। हम को यहां सशोक लिखना पड़ता है कि जिसको न्यायशीला दयावती गवर्नमेण्ट की अदालत ने स्वीकार कर लिया परन्तु पुलिस को इस करुणाजनक हृदयविदारक दृश्य पर तनिक भी दया न आई जिसको लिखते लेखनी कम्पायमान होती है पत्थर का हृदय भी मोम के समान पिघल उठता है कि मरती हुई माता अपने प्यारे पुत्र के देखने को तरसती हुई तड़प तड़प कर प्राणों को छोड़ती है परन्तु मनुष्यजीवन का दम भरने वाले "अशर-फुल मखलूकात" की दुंदुभी बजाने वाले बिलखती माता के आर्तनाद पर टुक दया न लाये।

श्रीमती जी को यह पूर्ण आशा होरही थी कि अब शीघ्र प्रिय पुत्र को एक वार आंखों से देखकर मैं अपने प्राण परित्याग करूंगी परन्तु जिस समय पुलिस की अस्वीकारी का समाचार आपको ज्ञात हुआ तत्क्षण हृदय पर वज्रपात होगया लहलहाती हुई आशालता पर एक दम तुषार पड़गया क्षण भर में आकृति परिवर्त्तित होगई मुख चन्द्र मलीन होगया और अन्त में ६ जुलाई सन् १९१४ ई० को रात्रि को श्रीमती ठाकुरदेवी जी ने पुत्र दर्शन की उत्कट इच्छा हृदय में ही रखकर और इस घोर अत्याचार को जगदीश्वर के न्याय का भरोसा रखती हुई सहन कर परलोक यात्रा की।

स्वर्गवासी लाला तिलोक चन्द्र जी ने श्रीमती ठाकुरदेवी जी के अन्तिम करुणामय दृश्य का पद्यों द्वारा अपूर्व चित्र खींचा है यथाः—

"ज़ब्त से अब काम पे चलराज गुज़र जाय है।

कोई दम में आख़िरी हिचकी का झटका आय है ॥
शान्ति की मौत मुझको काश हो जाती नसीब ।
क्या करूं तेरी जुदाई का कुलक तड़पाय है ॥
सहल हो जावे किसी सूरत निकलना जानका ।
झूठ ही कह दे कोई ऐ काश अब तू आय है ॥

इस प्रकार जिस समय श्रीमती के मृत्यु का समाचार देश में फैला तो समस्त देश ने महात्मा जी की इस असह्य वेदना में हार्दिक सहानुभूति दिखलाई। आपकी कोठी पर सहानुभूतक पुरुषों की भीड़ एकत्रित होने लगी। डाक द्वारा पत्रों और तारों की भरमार होना आरम्भ हुई। देश के प्रायः सभी आर्य हिन्दू ईसाई और मुसलमानी समाचार पत्रों ने इस दुःख में पूर्ण रीत्या सहानुभूति प्रकट की, अस्तु।

पाठक! थोड़ी देर के लिये अपने हृदय पर हाथ रखिये और कृपया आकर इस अद्भुत दृश्य पर दृष्टि डालिये और फिर महात्मा हंसराज का हृदय टटोलिये और विचार पूर्वक देखिये कि जहां एक ओर सहधर्मिणी दीर्घकाल तक रोग से दुःखित हुई पुत्रवियोग की असह्ययन्त्रणा को सह कर पतिदेव का साथ छोड़ती है इस पर समस्त देश से सहानुभूति का समुद्र उमड़ उठा साथ ही दूसरी ओर प्राणप्रिय प्राणाधार पुत्र बलराज जंजीरों में जकड़ा हुआ है कैसी कठिन समस्य है बतलाइये कौन ऐसा वीर है जो इस समय लक्ष्यभ्रष्ट और विचलित न होगा राजपूताना केशरी महाराणा प्रताप जैसे वीरव्रतधारी पुत्र और पुत्रियों के क्लेश को देख मर्यादा छोड़ विचलित चित्त हो यवनों की आधीनता स्वीकार करने पर सन्नद्ध होगये परन्तु महात्मा हंसराज जी इन लौकिक दुःखों की अणुमात्र भी चिन्ता न करते हुए अपने कर्त्तव्य पथ पर अटल बने रहे।

आप की मुखाकृति में किञ्चिन्मात्र भी परिवर्त्तन नहीं हुआ उनकी पूर्व और परावस्था में कोई भेद भाव दृष्टिपात् नहीं होता था, और इसलिये कोई दूरस्थ पुरुष आकर आपके दर्शन कर यह नहीं कह सकता था कि आप पर कोई विपत्ति है क्योंकि दुःख और सुख को आप समान ही मानते हैं एतदर्थ ही ये महान् क्लेश महात्मा जी पर अपना प्रभाव न डाल सके महाभारत के उद्योग पर्वान्तर्गत विदुर प्रजागर अध्याय ३२ में विदुर जी कहते हैं किः—

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डित बुद्धय:॥

अर्थात् सदसद् विवेकिनी बुद्धिवाले विद्वान् मनुष्य अप्राप्त की इच्छा नहीं करते और नष्ट हुये का शोच नहीं करते और न विपत्तियों के उपस्थित होने पर मोह को ही प्राप्त होते हैं हम साभिमान कह सकते हैं कि हमारे चरित नायक में ये समस्त गुण अविकल रूप से विद्यमान हैं। प्रयोजन यह है कि महात्मा हंसराज जी इस प्रकृति की अन्तिम परीक्षा में भी पूर्णतया उत्तीर्ण हुए। इसलिये हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि अवश्य महात्मा हंसराज जी पूजा के योग्य हैं। क्योंकि इसकठिन विपत्तिके समय में भी महात्मा जी ने धर्मप्रचार के कार्यों को बन्द नहीं किया और न कालिज कमेटी के प्रधानत्व से उपरत हुए किन्तु ऐसे विपत्तिके समय में भी आपने कई व्याख्यान दिये।

इस प्रकार श्रीमती ठाकुरदेवी जी का स्वर्गवास होने के पश्चात् अक्टूबर सन् १८१४ ई० तक प्रिय बलराज का अभियोग चलता रहा। और इस अभियोग में महात्मा जी को

बहुत सा अपना अमूल्य समय व्यय करना पड़ा और अन्त में अभियोग समाप्त हुआ और लाला बलराज जी को आजन्म कारावास होने का दण्ड दिया गया परन्तु पुनः अपील करने पर सात वर्ष कारावास का दण्ड शेष रह गया। प्रथम जब आजन्म कारावास की आज्ञा हुई और पुनः आजन्म से घट कर सात वर्ष का कारावास रह गया इन दोनों दशाओं में महात्मा जी को न हर्ष और न शोक ही हुआ किन्तु आपकी आकृति से समान भाव की ही झलक दिखाई देती थी। विचारिये आज यदि किसी पर थोड़ी सी विपत्ति पड़ जाती है तो वह अपने आपे को भुला देता है विपत्ति ग्रसित मनुष्य धर्म कर्म सब को तिलाञ्जलि दे बैठता है आर्य्यसमाज में भी ऐसे अनेकों बाबूराव विद्यमान थे और हैं कि थोड़ी सी भी उनके स्वार्थ में बाधा अथवा आर्य्यसमाज के प्रचार में थोड़ा सा भी कष्ट पड़ते ही अपने को आर्य्यसामाजिक कह-लाना ही बुरा मानने लगते हैं। परन्तु महात्मा हंसराज जी की धर्मपत्नी का मरण और उसी समय प्रिय पुत्र पर अभियोग और उसको सात वर्ष का कारवास इस भयंकर घोर विपत्ति के पड़ने पर भी आप जिस कार्य को कर रहे थे उससे कणमात्र विचलित न हुये किन्तु दृढ़ता पूर्वक अपने कर्त्तव्य क्षेत्र में डटे हुये इन आने वाली विपत्तियों का भी प्रतिकार करते रहे और किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता न की। इसलिये भर्तृ-हरि का निम्नस्थ वाक्य आपने यथार्थरूप से चरितार्थ कर दिखाया। यथाः—

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्य्यङ्कशयनम्,
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।

क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपिच दिव्यांबरधरो,
मनस्वी कार्य्यार्थी गणयति न दुःखम् न च सुखम् ॥

अर्थात् कहीं पृथिवी बिछौना है और कहीं उत्तम पलङ्ग पर सोना होता है। कहीं शाक हो भोजनार्थ मिलता है और कहीं नाना प्रकार के चांवलादि के भोजन प्राप्त होते हैं। कहीं दिव्य दुशाला ओढ़ने को मिलता है और कहीं केवल दिशा ही वस्त्र रह जाते हैं इस प्रकार मनस्वी कार्य्यार्थी किसी भी दशा में रहे परन्तु वह दुःख और सुख नहीं मानता सदा सब अवस्थाओं को वह एक सा ही मानता हुआ अपने अभीष्ट की सिद्धि में प्रयत्नवान् रहता है।

महात्मा हंसराज जी के आदर्श पवित्रजीवन, शान्तस्वभाव, कर्त्तव्यपरायणता और धर्मिक प्रेम ने ही अनेक शिक्षित नवयुवकों के कोमल हृदयों में कूट कूट कर वेदों की अपूर्व श्रद्धा, जातीय प्रेम और स्वदेशाभिमान भर दिया है जो नवयुवक आज स्वदेश, स्वजाति. स्वधर्म और पवित्र वेदों के लिये अपना तन, मन, धन, अर्थात् सर्वस्व निछावर करने को तैयार हैं जहां अङ्गरेजी शिक्षा प्राप्त कर पाश्चात्य विद्वानों के कुत्सित विचारों को लेकर हमारे नवयुवक विद्यार्थी वेदों को गड़रियों का गीत कह रहे थे वे ही नवयुवक महात्मा हंसराज की शिक्षा प्राप्तकर वेदों को ईश्वरी ज्ञान, आदर्श मान उनके ऊपर अपने प्राण निछावर करने को उपस्थित हैं सत्य है पारसमणि लोहे से छूने पर उस लोहे को सोना बना देता है ऐसी जनश्रुति है परन्तु हम कहते हैं महात्मा जन ऐसे पारसमणि होते हैं कि लोहरूप अज्ञानियों को छू

कर सोना ही नहीं बनाते किन्तु साक्षात् पारसमणि बना देते हैं।"

महात्मा हंसराज जीने अपनी संगति अपनी शिक्षा अपूर्व धार्मिकभाव से ऐसे नवयुवक उत्पन्न कर दिये हैं जो आज आर्य्य जाति को उठाने में अपना अमूल्य जीवन सानन्द और सोत्साह समाप्त कर रहे हैं।

त्याग का एक और अपूर्व उदाहरण

सन् १६१६ ई० के उष्णकाल में आपने कश्मीर यात्रा की और इन्हीं दिनों श्रीनगर आर्य्यसमाज का वार्षिक उत्सव था अतएव अमरनाथ होते हुये इस उत्सव में जाकर सम्मिलित हुये वास्तव में यह यात्रा आपने पैदल ही की थी। वहां से लौटते समय श्रीनगर आर्य्यसमाज ने २००) रु० महात्मा जी को मार्ग व्यय आदि के निमित्त दिये परन्तु आपने अस्वीकार करते हुये यह कहा कि मैं यहां तक पैदल चलकर आया हूं एतदर्थ मैं रुपया नहीं ले सकता। परन्तु सामाजिक भद्र पुरुषों ने न माना और हठ पूर्वक यह रुपया आप को दिया अन्त में विशेष आग्रह करने पर यह रुपया आपने रख लिया। और वह २००) रु० श्रीनगर आर्य्यसमाज की ओर से वेद प्रचार फण्ड में जमा कर दिया। इसी प्रकार आप के के अनेक त्याग के उदाहरण प्राप्त होते हैं। महात्मा हंसराज का जीवन इसी प्रकार की शिक्षाप्रद और रोचक घटनाओं से भरा पड़ा है।

महात्मा जी ने अपने जीवन में ऐसे अनेक व्याख्यान दिये हैं जिन में गवेषणापूर्वक आपने अपने पवित्र विचार प्रकट किये हैं वास्तव में उन सारगर्भित व्याख्यानों का-

पाठ कर के भारतीय भव्य सन्तानें अपने जीवन को वास्त विक मानवी जीवन बना सकते हैं ये कतिपय व्याख्यान निम्न लिखित हैं (१) परमात्मा हमारी रक्षा कीजिये (२) ईश्वर के प्यारे दास पुत्र और सखा (३) अन्ध विश्वास का त्याग और सत्य श्रद्धा का ग्रहण (४) धर्म ही सब से महान् बल है (५) तह तक पहुँचो (६) अमृतपान (७) वैदिक धर्म कैसे कर्म सिखाता है (८) आर्य्य जाति में सच्चे ब्राह्मणों की आवश्यकता (९) सच्चे ब्राह्मण कैसे उत्पन्न हो सकते हैं (१०) नवयुवकों के लिये आदेश (११) जाति की एकता और उन्नति (१२) समस्त संसार के लिये वैदिक धर्म (१३) हमारा अधःपतन क्यों हुआ (१४) जीवन का पवित्र उद्देश (१५) नागरी संस्कृत दयानन्द कालिज आर्य्यसमाज (१६) धर्मयुद्ध में सफलता किस प्रकार हो (१७) हिन्दु जाति पर वायु और सूर्य्य का प्रभाव (१८) ब्रह्म प्राप्ति के साधन (१९) श्री स्वामी दयानन्द का वास्तविक और सर्वोपरि मिशन (२०) रामायण की समता (२१) वेदों का वास्तविक स्वरूप प्रकट करने वाला (२२) हमारा शिक्षा सम्बन्धी प्रश्न। इनके अतिरिक्त अन्य शतशः व्याख्यान आपने दिये हैं जो पुस्तकों में अथवा पत्रों में प्रकाशित होते हैं। यदि पाठकों की रुचि होगी तो लेखक यथासमय नागरी अनुवाद कर सेवा में उपस्थित करेगा।

आर्य सभ्यता की अनन्य भक्ति

भारत की सभ्यता और प्राचीन गौरव से महात्मा जी का अनन्य प्रेम है जिसका कुछ परिचय हम पूर्व दे चुके हैं कि जब आप लाहौर के मिशन हाई स्कूल में इण्ट्रेंस क्लास में पढ़ते थे तब स्कूल के हेडमास्टर के आर्य्यों की सभ्यता पर

कटाक्ष करते ही उसका सप्रमाण सयुक्ति निराकरण कर आर्य्यजाति का मुख उज्ज्वल किया था और इसी दिन की इस घटना ने महात्मा जी के जीवन में एक अद्भुत परिवर्त्तन कर दिखाया था।

महात्मा जी की इस धुनि और इस लगन ने भारत के सहस्रों नवयुवकों को अपनी प्राचीन वृद्ध भारत की सभ्यता का कट्टर प्रेमी और अभिमानी बनाया। मुख्य कारण इसका यही था कि आप सदा भारतीय प्राचीन सभ्यता की ओर नवयुवकों की रुचि आकर्षित करने का विशेष प्रयत्न करते थे एकबार आपने "नवयुवकों को आदेश" इस विषय पर व्याख्यान देते हुये जिन ओजस्वी शब्दों में भारत की दशा का चित्तापकर्षक चित्र खींचा है वह निस्सन्देह भारत के होनहार नवयुवकों को विचार पूर्वक पढ़ने योग्य है, इसलिये उसका संक्षिप्त भाव हम यहां उद्धृत करना परमोचित समझते हैं यथा—

जिन नवयुवकों ने आर्य्यसमाज के आरम्भ काल का निरीक्षण नहीं किया वे इस बात का अनुभव नहीं कर सक्ते कि उस समय आर्य्य पुरुषों को किन २ कष्टों का सामना करना पड़ा जिस समय स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने धर्मप्रचार का कार्य्य आरम्भ किया। उस समय उनको अनेक कठिनाइयों के साथ युद्ध करने पड़ा। परन्तु मुख्यतः सब से बड़ी ३ कठिनाइयां इनके सामने आईं उनका वर्णन करना मैं उचित ज्ञात करता हूं—

१—सब से प्रथम कठिनाई यह थी कि यूरुपीय सभ्यता के भारत में विस्तृत होने के कारण हम में से अधिकांश

सादर यह समझने लगे थे कि हमारा धर्म निकृष्ट धर्म है। और हमारे इतिहास में किसी हमारे पूर्वज के ऐसे पवित्र चरित अथवा घटनायें प्राप्त नहीं होतीं जो साभिमान दूसरों के समक्ष उपस्थित कर सकें। इस समय जो पाश्चात्य सभ्यता का युगान्तर हुआ। तो उसके प्रचारकों को स्वर्गीय दूत मान लिया गया था जिस प्रकार स्पेन जब कोलम्बस का अग्रणी मार्गदर्शक हो सब से पहले जिन टापुओं में पहुँचा तो वहां के मनुष्यों ने उसको देवता कहना आरम्भ कर दिया। हमारे देश निवासियों ने भी यही विचार किया और अपने पूर्वजों को नीच समझने लगे। यहां तक कि लज्जा के कारण अपने पूर्वजों का नाम तक स्मरण करना बुरा समझा जाने लगा। और उनको घृणा एवं नीच दृष्टि से अवलोचन करने लगे। इस प्रकार के भाव प्राबल्यता के साथ देश में फैल गये थे। तथा इस समय भी न्यूनाधिक रूप से इस प्रकार के भाव विद्यमान हैं।

मैं निश्चयात्मक कहूंगा कि हमारे समाज में से ब्रह्मसमाज के मतानुयाइयों का यह पूर्ण विचार हो गया था कि यदि कुछ सीखना है तो पाश्यात्य देशों से ही प्राप्त होगा। यदि आदर्श पुरुष प्राप्त हो सक्ते हैं तो पाश्चात्य देशों से राम और कृष्ण आदर्श नहीं थे किन्तु मसीह ही उनका आदर्श था।

२—दूसरी कठिनाई यह थी कि शताब्दियों से पौराणिक धर्म फैलने के कारण हिन्दू नितान्त निर्बल हो चुके थे यहां तक कि दूसरे मतों के सामने हिन्दू अपने को स्वयं नीच मानने लगे थे। एक देवता के स्थान पर सहस्रों देवताओं का पूजन करना आरम्भ कर दिया तथा एक वेद ही नहीं किन्तु

संस्कृत मात्र के प्रत्येक ग्रन्थ को धर्मपुस्तक मानने लगे। भ्रष्टातिभ्रष्ट तन्त्र ग्रन्थों को पूज्य मानना आरम्भ करदिया— इसका परिणाम यह हुआ कि पुराण तन्त्रादि ग्रन्थों की असम्भव, घृणित और असत्य बातों के कारण अन्य मतों के समक्ष इनको चुपही होना पड़ता था। अतएव यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध बात सी होगई थी कि हिन्दू लोग दूसरे मतवादियों के सामने अपने धर्म की रक्षा नहीं कर सक्ते थे।

३—तीसरी कठिनाई यह थी कि हिन्दूजाति अपने कृत्रिम बन्धन में जकड़ी हुई थी। इनमें से कुछ बन्धन तो टूट चुके थे और कुछ अद्यावधि अविकल रूप से वैसेही विद्यमान हैं। परन्तु आर्य्य समाज के आरम्भिक काल में यह बन्धन पूर्ण युवावस्था को प्राप्त थे—जैसे शूद्रों को विद्यादान करना एक महान् पाप समझा जाता था, ब्राह्मणों के अतिरिक्त बहुधा दशाओं में अन्य द्विजों को भी वेद पढ़ने का सर्वथा अनधिकार था, इस समय किसी को स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं आसक्ता था कि विवाह के समय मूर्त्तिपूजा की क्या आवश्यकता है। और इस समय शूद्रों को पढ़ाने का विचार तक भी उत्पन्न नहीं होसक्ता था। ऐसे समय में यदि कोई वर्णव्यवस्था गुणकर्म और स्वभाव से मानने को कहता तो कदाचित् उसे उन्मत्त ही समझा जाता। वैदिकरीत्या विवाह करना इस समय साधरण कार्य्य नहीं था। एक समय समाचार है कि एक आर्य पुरुष ने अपनी पुत्री का विवाह वैदिक रीति से करवाना चाहा जब विवाह का ठीक समय आया तो उस बेचारे को एक कमरे में बन्दकर दिया और

बाहर से ताला लगा दिया गया। इसलिये कि वह अपनी पुत्री का विवाह वैदिक रीति से न कर सके।

ऐसी कठिन समस्या के समय ऋषि का जन्म हुआ।

ऋषि के क्या अर्थ हैं?

ऋषि होना कोई साधारण बात नहीं है। ऋषि वह है जिसके अन्दर गति हो—इसका लक्षण निरुक्तकार लिखते हैं कि जिन्हों ने धर्म का साक्षात् कर लिया हो वह ऋषी है ऋषी वह कदापि नहीं हो सक्ता कि जो शनैः २ पढ़ कर विद्वान् हुआ हो—किन्तु ऋषी वे हैं जो एक स्वरूप में और एक अवस्था में हों। वह एक ही बार की दृष्टि में समझ जाते हैं कि बात क्या है?

स्वामी दयानन्द ऐसे ही एक ऋषि थे जिन्हों ने धर्म को स्वयं देख लिया था और धर्म को साक्षात् कर लिया था जिन्हों ने धर्म का एक तत्व तो यह निकाला कि सत्यता क्या है और दूसरे सत्यता का क्या हो सक्ता है। यह जान कर ही उन्हों ने अपने मिशन का प्रचार किया।

ऋषि के प्रचार का प्रभाव

ऋषि के प्रचार का सब से महान् प्रभाव यह हुआ कि प्राचीन बन्धन टूटना आरम्भ हो गये पाखण्ड जाल का भांडा फूट गया। कन्नौज में स्वामी के व्याख्यान के पश्चात् अनेक मनुष्यों ने अपनी मूर्त्तियां नदी में फेंक दीं।

ऋषि दयानन्द अपने मिशन का एक सत्यता का देवता और आदर्श निर्भय था। वह किसी से डरता नहीं था। इसके

में सब से पूर्व इन को ब्रह्मसमाज वालों ने सहायता दी। और अपने मन्दिर में इनका व्याख्यान करवाया।

प्रथम दिन स्वामी जी ने मूर्त्तिपूजा के खण्डन पर व्याख्यान दिया। ब्रह्म समाजी इस पर बड़े प्रसन्न हुये। द्वितीय दिन आपने पुनर्जन्म पर एक मनोहर व्याख्यान दिया। परन्तु यह व्याख्यान ब्रह्मसमाजियों के मन के प्रतिकूल था। इस लिये आपे से बाहर हो गये। और इस समय वे प्रकट रूप में तो कुछ न कह सके। परन्तु क्रोधित अवश्य हो गये। स्वामी जी ने इसकी कुछ चिन्ता न की और अपने कार्य्य में दत्तचित्त बने रहे।

इस समय के कष्टों का अनुमान आप किस प्रकार कर सकते हैं अब तो जो चाहे वैदिक संस्कार बिना किसी विरोध के स्वतन्त्रता के साथ कर सकता है। परन्तु आर्य्य-समाज के आरम्भिक काल में यह करना असम्भव सा प्रतीत होता था।

श्री स्वामी जी ने इस बात को दूर किया। और खण्डन आरम्भ किया। जिस के कारण मनुष्यों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हुआ। हमारे वृद्ध पूजनीय प्रधान लाला साईं दास जी बतलाते थे कि एक दिन जब स्वामी जी ने मूर्त्तिपूजा की खण्डन किया और श्रोता व्याख्यान सुन कर बाहर निकले। तो उन से ब्रह्म समाजियों के प्रधान ने कहा कि "मेरा जीवन ही नष्ट हो गया क्योंकि मैंने एक बार भी मूर्त्तिपूजा का खण्डन नहीं किया" मानो इस व्याख्यान ने उनके चित्त में भी उत्साह का अङ्कुर आरोपित किया।

स्वामी जी के प्रचार का जो दूसरा प्रभाव हुआ वह यह

था कि स्वामी जी ने मनुष्यों में यह प्रभाव उत्पन्न कर दिया कि प्राचीन आर्य्य मूर्ख असभ्य नहीं थे किन्तु विद्वान् और सभ्य थे—सायंस के प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर राय पिछले दिनों लाहौर आये थे—आपने प्रायः उनके व्याख्यान पढ़े और सुने होंगे उन्होंने अपने व्याख्यान में बतलाया था कि रासायनिक विज्ञान हिन्दुओं को उस समय उपस्थित था जब कि अन्य देशों को इसका नितान्त ही परिज्ञान न था।

श्री स्वामी जी ने साधारणतया यह प्रकट किया था कि आर्य्यजन महान् विद्वान् होते थे। और इनकी सभ्यता सर्वोपरि थी अब तो क्या था ? युगान्तर हो गया और वे लोग जो मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र और योगिराज महात्मा कृष्ण को एक अत्यन्त सामान्य पुरुष मानते थे वे अब उनको उच्च आदर्श महात्मा मानने लगे। और इन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि उनके जीवन सर्वोच्च और पवित्र थे। एतदर्थ उनका अनुगमन किया जावे। अब लोग अपनी जातीयता को प्रतिष्ठा की दृष्टि से अवलोकन करने लगे तथा जातीयगौरव वृद्धिङ्गत होने लगा श्री स्वामी जी के प्रचार ने यही प्रभाव नहीं किया किन्तु इनके सत्यतापूर्ण कथन ने अन्य बहुत सी सत्यताओं को उत्पन्न कर दिया—जो सत्यार्थ प्रकाश में उस स्थान पर उपस्थित हैं जहां उन्होंने आर्य्य समाज के मन्तव्यामन्तव्यों का वर्णन किया है और वही आर्य्यसमाज के मन्तव्यामन्तव्यों का अर्थात् श्री स्वामी जी के समस्त सिद्धान्तों और उपदेशों का सार है—वहां स्वामी जी लिखते हैं कि मैं केवल वही बातें कहता हूँ जो वेदों के सर्वथा अनुकूल और ऋषियों ने जिनका प्रतिपादन किया है इस प्रकार

५२ मन्तव्यों पर थोड़ी देर विचार करें। सब से पहिली बात जो स्वामी जी ने ज्ञात की है वह सत्यता है उन्होंने बतलाया कि "हम वेदों को एतदर्थ नहीं मानते कि इन से कुछ सांसारिक लाभ होता है अथवा वे हमारे पूर्वजों के धर्म पुस्तक हैं। या इन से एकता का भाव उत्पन्न होता है यद्यपि यह सब बातें भी सत्य हैं तथापि हम वेदों को इस लिये मानते हैं कि उन में सत्यता का उपदेश है" आर्य्यसमाज केवल सत्यता का उपदेश करता है। और जिस सत्यता का उपदेश इसके प्रवर्तक ने किया है उसी को ग्रहण कर आर्य्य समाज अग्रसर हो रहा है।

स्मरण रखिये कि सत्यता प्रकट रूप में चाहे कुछ अच्छी प्रतीत न हो परन्तु अन्त में विजय सत्यता का ही होता है। और यही एक ऐसी प्रबल शक्ति है जो मनुष्यों के हृदय पर अधिकार प्राप्त कर सकी है।

यदि आर्य्य (हिन्दू) जाति के अन्तर्गत इस सत्यता का सञ्चार हो जावे कि उसको एक ही ईश्वर की पूजा करनी उचित है। अथवा इसके अन्तर्गत इस बात का पूर्ण रीत्या प्रचार हो जावे कि वह एक ही संध्या एक ही गायत्री और वह एक ही प्रार्थना करे तो यह जाति निर्बलता को त्याग कर पूर्ण बलवती हो जावेगी।

स्वामी जी ने इसी कारण उच्चैः स्वर से इसकी घोषणा की और अनेक देवपूजन के स्थान पर एक ईश्वर की पूजा की

ओर मानव समुदाय का चित्त आकर्षित किया। तथा एक संध्या और एक गायत्री का जप करना सिखाया। स्वामी जी ने जहां प्रकृतिवाद का मण्डन किया वहां ईश्वरवाद और जीवात्मवाद का भी पूर्णरीत्या प्रतिपादन किया और जहां स्वामी जी ने प्रारब्ध का निरूपण किया वहीं पुरुषार्थ की सत्ता भी समष्टि रूप से स्वीकार की। वस्तुतः स्वामी जी ने जिन सत्यताओं का प्रकाश किया है वे ही आर्य्यसमाज की सङ्गठन शक्ति की उत्पादक हैं—

जो मनुष्य यह चाहते हैं कि आर्य जाति का उद्धार हो उनको स्मरण रखना चाहिये कि आर्य जाति की उन्नति के वे ही कारण हैं जो स्वामीजी ने निरूपण किये हैं वैदिक सत्यता ही महान् कार्यों की सम्पादन करने वाली है उसही से महान् कार्य सम्पादन हो सके हैं जो तुम संसार में करना चाहते हो—

वैदिक सत्यता केवल एक जाति के लिये नियत नहीं है यह मानव सृष्टि की ईसाई मुसलमान आदि जातियों के लिये भी उसी प्रकार विहित है कि जिस प्रकार एक आर्य्य जाति के लिये।

यह बात आप को पूर्णतया स्मरण रखनी चाहिये कि जब संसार में सत्यता का प्रकाश फैलता है तो उन महान् एवं उच्च कार्य्यों के लिये साधन भी उत्पन्न हो जाते हैं। सत्यता स्वयं नहीं 'फैल सकती। प्रायः ऐसा होता है कि सत्यता

विद्यमान हैं परन्तु मनुष्य अयोग्य हैं इस लिये अल्पकाल में ही यह ज्ञात होने लगता कि सत्यता का अस्तित्व मिट गया परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि सत्यता का अस्तित्व कदापि नहीं मिट सक्ता किन्तु यह मानना पड़ेगा कि उन मनुष्यों का ही अस्तित्व मिट गया।

इस प्रकार जब कोई महान् आदर्श योग्य पुरुष उत्पन्न होता है तो उस सत्यता का कि जिसका अस्तित्व मिटा सा प्रतीत होने लगा था फिर से प्रकाश फैल जाता है इससे सिद्ध होता है कि सत्यता का प्रकाश विस्तृत करने के लिये योग्य मनुष्यों की परमावश्यकता होती है।

आर्य्यसमाज ने इस आवश्यकता को पूर्णरूप से ज्ञात किया और प्रचार का पूर्ण उद्योग किया। पूर्व आर्य्य सामाजिक सभासदों के पास पुष्कल समय था वह नौकरी का कार्य्य करते हुये भी सामाजिक महान् कार्य्यों के करने के लिये अमूल्य समय प्रदान करते थे। परन्तु अब उस दशा का परिवर्त्तन हो गया और इसलिये अब वे पूर्व के साधन भी परिवर्त्तित हो गये।

धर्म प्रचारक बनने के नियम

यदि आपके चित्त में यह विचार है कि मेरे द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार हो और यह भाव सत्यता पूर्वक आप के हृदय में विद्यमान है तो सब से पूर्व आप को एक बात करनी चाहिये कि "आप सांसारिक आवश्यकताओं और इन्द्रियजन्य कामनाओं का यथाशक्ति पूर्ण रीत्या परित्यांग कर दें और जीवन साधारण

ज़ीवनी के रूप में परिवर्त्तन कर दें देश के अन्तर्गत जितने महान् कार्य्यकर्त्ता आदर्श पुरुष हैं वा हुये हैं उनकी ओर दृष्टि प्रसारित कीजिये और देखिये कि वह अपने जीवन को किस प्रकार साधारण रूप से व्यतीत करते हैं-जब आप इस प्रकार का साधारण जीवन बना लें। तब दृढ़ सङ्कल्प कर निर्णय कर लो नेत्रों को मत फेरो और न झिझको आदर्श को सन्मुख रखकर वेधड़क कार्य्य करते चले जाओ तो निश्चय सफलता तुम को प्राप्त होगी।

हमारे कालिज में दो विद्यार्थी पढ़ते थे उन दोनों के हृदय में धर्म और देश की सेवा का पूर्ण विचार उपस्थित था। एक वार वह परस्पर बातें करने लगे। तो एक ने दूसरे से कहा कि तुम्हारे लिये तो देश और धर्म की सेवा करना सुगम है क्योंकि 'तुम्हारे माता पिता तुमसे धनादि के लाभ की आशा नहीं करते तब दूसरे ने कहा कि क्या तुम्हारे लिये यह सुगम नहीं है इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरे लिये वड़ी कठिनाई है क्यों कि मेरे पिता की एक लक्ष की सम्पत्ति है अब यदि इस एक लक्ष का द्विगुण न करूं तो पिता जी नितान्त हताश होजायंगे तुम्हारे लिये तो अत्यन्त सरल है कि धर्म की सेवा करो—

इस उदाहरण से प्रकट होता है कि हम दूसरों के लिये धर्मोपदेश कर सक्ते हैं तथा हम दूसरों को प्रचार के लिये कह सक्ते हैं परन्तु स्वयं उद्यत नहीं होते। हम दूसरों को कह देते हैं कि तुम धर्म पर आत्मवलिदान करदो सर्वस्व धर्म पर निछावर कर दो और स्वयं इस जनश्रुति के अनु-

सार कि "हमारा पैर न भींगे परंतु देश का बेड़ा पार हो जावे" परोपदेश कुशल बन जाते हैं ऐसे मनुष्य संसार में कुछ कार्य्य नहीं कर सके—नवयुवक ! पहली बात स्मरण रक्खो कि कार्य्य में सफलता तभी प्राप्त हो सकी है जब तुम्हारे आत्मा में आत्मत्याग और सत्यता की रक्षा हो—दूसरी बात जो मैं चाहता हूँ कि तुम स्मरण रक्खो वह यह है कि यदि सांसारिक कामनाओं का अस्तित्व मिटाना है यदि बलात् आत्मत्याग करना है तो यह तभी सम्भव हो सकता है कि जब आप परमात्मा से अटल सम्बन्ध उत्पन्न करें। अतएव आवश्यक है कि उस जगदीश्वर के लिये तुम्हारे हृदय में अनन्यश्रद्धा और भक्ति हो। और उस प्रभु से परिचय हो। मैं प्रार्थना को एक बलवती शक्ति ज्ञात करता हूँ और इस पर पूर्ण विश्वास रखता हूँ प्रार्थना करने वाला परमात्मा से अपूर्ण शक्ति प्राप्त कर अपने में धारण करता है। मेरे जीवन के अनुभव इस बात को सम्यक् प्रकार सिद्ध करते हैं। आप से भी मैं यही प्रार्थना करता हूं कि आप भी अपने भीतर प्रार्थना का उत्तम भाव उत्पन्न करो। आप शुष्क दार्शनिक की भांति न बनें जो केवल बातें ही बनाना जानते हैं और स्वयं आचरण करना नहीं चाहते।

मेरे प्रिय नवयुवको ! यदि आपको अपने धर्म और देश से वास्तविक प्रेम है और उसको साभिमान स्थित रखना चाहते हो तो आप उपर्युक्त दोनों बातों की परीक्षा कीजिये और देखिये कि कि कल्याण होता है या नहीं— इति

प्रियपाठकगण ! इस ऊपर प्रकाशित "नवयुवकों को आदेश" के देखने से आप यह भले प्रकार समझ सके हैं

कि एक आदर्श पुरुष में जिन अपूर्व गुणों का समावेश होना चाहिये वे समस्त गुण हमारे चरित नायक में अविकल रूप से विद्यमान हैं हमारे होनहार नवयुवक इस ऊपर प्रकाशित आदेश से अपने जीवन का पूर्ण सुधार कर सच्चे देशसेवक और धार्मिक बनने का पाठ सीख सक्ते हैं। बस अब हम अधिक न लिख कर लेखनी को भी यहीं विश्राम देते हैं। और पाठकों से क्षमा मागते हैं कि अल्प समय के कारण वा अज्ञानता के कारण यदि इसमें कुछ त्रुटि रह गई हो तो उसको क्षमा करेंगे। क्योंकि एक महान् आदर्श पुरुष का जीवन लिखना एक कठिन कार्य्य है तिस पर मुझ जैसे अल्पबुद्धि के लिये तो अत्यन्त ही दुःसाध्य है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥